UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180512
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/S53Ni. Accession No. H 2794

Author शास्त्री, आचार्य चतुरसेन

Title नीलमणि

This book should be returned on or before the date last marked below.

नीलमणि

लेखक

आचार्य चतुरसेन

प्रकाशक—

चौधरी एण्ड सन्स

बनारस १

★

मूल्य दो रुपया

प्रकाशक —

चौधरी एण्ड सन्स

बनारस

आचार्यजी

की नवीनतम

रचनायें

★

५।।।=) आलमगीर

२) धर्मपुत्र

८) सोमनाथ

Checked 1969

मुद्रक—

श्यामलाल

अनन्त प्रिंटिङ्ग प्रेस

भैरोनाथ, बनारस

१

मालकिन रसोई घर में बैठी बड़ी तत्परता से पकवान बना रही थी। महाराजिन सामने बैठी उनकी मदद कर रही थी। रसोई के द्वार के पास महरी बैठी दराँत ले तरकारी काट रही थी। बहुत से मीठे और नमकीन पकवान बन चुके थे और उनकी सोंधी सुगन्ध घर में भर रही थी। दिन काफी चढ़ चुका था; हवा में अधिक ऊष्णता न थी। सूरज की धूप खिल गई थी। परिश्रम और चूल्हे की गर्मी के कारण मालकिन के उज्ज्वल ललाट पर पसीने की बूँदें मोती की लड़ी के समान सोह रही थीं। उन्होंने फुर्ती से हाथ चलाते हुए महरी से कहा—देख तो री रधिया, यह लड़की अभी सोकर उठी या नहीं। इस लड़की से तो भई नाक में दम है, दिन बाँस भर चढ़ आया और महारानी अभी सो रही हैं! लड़की क्या है, कुम्भकरण की दादी है!

महरी ने अपनी सुर्मई आँखों से गृहिणी को देखा और हँस दी। इसके बाद ही हाथ की थाली और चाकू नीचे रख, उठ कर चली गई। मालकिन ने जो दुलारी बेटी की नींद पर टीका की थी, उसी की टिप्पणी करते हुए महराजिन ने भुनभुना कर कहा—अभी बचपन का अल्हड़पन है, घर-गृहस्ती का जब बोझ सिर पर पड़ेगा, भगवान् गोद भरेगा, तो देखना बिट्टोरानी और कितना सो सकेंगी!

महाराजिन की टिप्पणी से खुश होकर मालकिन ने मुस्कुरा दिया। एक सुखभरा साँस छोड़ कर उन्होंने कहा—मैं इसी सोच में मरी जाती हूँ गोपी, कि पराये घर उसे जाना है, ऐसी नादानी कैसे निभेगी? जब देखो पागलपन की बातें किया करती है।

लेकिन, बहू जी ! किताबें कितनी पढ़ गई हैं बिट्टोरानी, इतना पढ़ना कुछ सहज है क्या ? फरफर पढ़ती ही जाती हैं ! बहू जी, तुमने देखा है ?

गृहिणी ने पुत्री की प्रशंसा से पुलकित होकर कहा—पढ़ने ही से क्या हुआ गोपी, अभी उसे स्याह-सफेदका कुछ ज्ञान थोड़े ही है ?

"सब हो जायगा बहू जी, भगवान् उसकी उम्र बड़ी करें। अभी वह है कितने दिन की। कल तक तो मैंने उसके पोतड़े धोए हैं।"

मालकिन इस बार हँस दीं, इसी समय महरी ने अपनी चाभियों का गुच्छा झुमका कर कहा—माँ जी! बिट्टोरानी तो अपने कमरे में हैं ही नहीं।

गृहिणी ने क्षण भर के लिए अपना चलता हाथ रोक कर कहा—कमरे में नहीं है तो कहाँ है ? देख न, बाहर की बैठक में जाकर किताबें उलट रही होगी !

महरी ने इस बार कहा—रघू दादा कहते हैं कि बिट्टोरानी आध घण्टा हुआ नदी की ओर गई हैं।

मालकिन के चेहरे पर गुस्से की ललाई छा गई, उसने हाथ का बेसन पटक कर कहा—हाय करम, न जाने कब उसे भले-बुरे का ज्ञान होगा।

महराजिन इस बार कुछ बोल न सकी। क्या कहे, यह वह समझ ही न सकी। गृहिणी रसोई का बचा काम महराजिन के सुपुर्द कर हाथ धो, रसोई के बाहर आई।

लड़की के कमरे में आकर देखा, पलङ्ग, बिछौना, तकिया—सब अस्त-व्यस्त पड़े हैं। फर्श पर बहुत से कागज के टुकड़े फटे पड़े हैं, किताबें बे-तरतीबी से मेज पर छितराई पड़ी हैं, साड़ी-जम्फर इधर-उधर उघाड़े पड़े हैं। यह सब देख कर मालकिन बड़बड़ाने लगीं। ठकुरानी राजरानी बनी है, हाथ से तो काम करेगी नहीं,

कमरे की क्या गत बना रक्खी है ? शऊर तो है ही नहीं, पराये घर अच्छा नाम धरायेगी। बड़-बड़ाते हुए मालकिन ने सब चीजों को सहेजना और कमरे को साफ करना शुरू कर दिया। कमरे की सफाई करते-करते गृहिणी की नजर मेज की अधखुली दराज पर पड़ी। उनमें बहुत-सी सटर-पटर चीज भरी पड़ी थी। उसने दराजों की भी सफाई कर डाली। निकम्मे कागजों को वह निकाल-निकाल कर नीचे टोकरी में फेंकती जाती थी, एकाएक उसकी दृष्टि कुछ अधलिखे पत्रों पर पड़ी। सर्वनाश ! यह अभागिनी चिट्ठियां किसे लिखती है ? उसने हाथ का काम रोक, उन्हें पढ़ना शुरू किया। पढ़ते-पढ़ते वह गुस्से से थरथराने लगी। उसने उन्हें फाड़ कर फेंक दिया और बैठकर रोने लगी।

आँधी के झोंके की तरह नीलू ने अपने कमरे में प्रवेश किया। उसकी साड़ी और जूते कीचड़ में सन गये थे। चेहरा धूप और परिश्रम के कारण लाल हो रहा था, बाल अस्त-व्यस्त थे। उसके एक बगल में एक कुत्ते का पिल्ला और दूसरी में झब्बा भरे चने के ताजे बूट थे। उसने माँ को अपने कमरे में सफाई करते देखा। कमरे की सब चीजें व्यवस्थित देखी, तो वह बाहर से ही चिल्ला उठी—अबो अम्मा ! तुम बहुत अच्छी हो, इसी तरह कमरे को रोज साफ कर दिया करो, मैं बाबूजी से कहकर तुम्हें रधिया के बराबर तनख्वाह दिलवा दूँगी। इसके बाद बगल का चने का बोझ मेज पर रख अपने प्यारे पिल्ले को उसी तरह गोद में लिये, वह हँसती हुई माँ के गले से लिपट गई।

गृहिणी ने उसे कड़े हाथों से दूर ढकेल दिया। स्नेहमयी माता के इस व्यवहार से अवाक् होकर वह क्षणभर स्तब्ध रह गई। गृहिणी ने कहा—इसीलिए मैंने तुझे कोख में जन्म दिया था री ?

नीलू का तेज और दर्प, विद्रोह कर उठा। उसे जैसे उसकी माँ

ने निठुराई से ढकेल दिया था, उसी तरह वह माँ के प्रेम को ढकेल तन कर खड़ी हो गई। उसने माँ को मुँह दर मुँह जवाब दिया—अपनी कोख में जन्म देने को मैंने तुमसे नहीं कहा था, माँ ?

बेटी के इस अद्‌भुत जवाब को सुनकर गृहिणी टुकुर-टुकुर उसका मुँह देखती रह गई। उसके आँसू सूख गये, वह क्रोध से थर-थर काँपने लगी। उसने काँपते स्वर में कहा—तेरी इतनी जबान, तू पैदा होते ही क्यों नहीं मर गई ?

"तुम भी तो पैदा होते ही नहीं मरी, माँ ! फिर उस वक्त तुम्हीं ने मुझे क्यों नहीं मार डाला, तब क्या मैं तुम्हें रोक थोड़े ही सकती थी !"

गृहिणी गरज उठी—मैं पूछती हूँ यह तेरे कैसे लक्षण हैं ?

नीलू ने पिल्ले को धरती पर पटक कर मेज पर धम्म से बैठते हुए पञ्चम स्वर में बोली—मैं पूछती हूँ कौन से लक्षण ?

"तू गई कहाँ थी ?"

"नदी किनारे घूमने गई थी।"

"क्यों गई थी ?"

"सुबह स्वच्छ हवा में घूमने से तन्दुरुस्ती ठीक रहती है, खाया-पिया ठीक पचता है। देखतीं नहीं, बाबू जी रोज दोनों समय घूमने जाते हैं ?"

"और ये चिट्ठियाँ कैसी लिखी हैं, री ?"

नीलू सिंहिनी की भाँति दराज पर झपट पड़ी। उसने पल भर में दराजों को देख डाला, फिर वह बिलकुल पागल की तरह चिल्लाकर बोला—तुमने उन्हें छुआ है, पढ़ा है ? मैं कहती हूँ माँ ! तुम बिलकुल जंगली हो, तुम्हें शर्म आनी चाहिये।

पुत्री से ऐसा अतर्कित तिरस्कार पाकर गृहिणी सन्न हो गई। वह बदहवास की तरह आँख फाड़-फाड़ कर बेटी के क्रोध से

फड़कते हुए होंठ देखने लगी। नीलू भी फिर और कुछ न बोली, वह नथुने फुलाये बिना हिले-डुले खड़ी रही!

सहसा स्थिर गम्भीर स्वर में किसी ने कहा—"नीलू, बड़ी लज्जा की बात है, अम्मा से क्या ऐसे बोला जाता है?"

वह नया-कण्ठ-स्वर सुनकर गृहिणी ने मुँह फेर कर देखा। नीलू भी पलट कर खड़ी हो गई। बोलनेवाला २४ वर्ष का नवयुवक था। अभी उसकी रेखें भींगी थीं। वह एक सुन्दर बलिष्ट और सुगठित शरीर का नवयुवक था। वह सिल्क की कमीज और सफेद जीन का नेकर पहने था। गृहिणी की तप्त-शलाका के समान दृष्टि उसकी आँखों में धँस गई। इस वेदना को सह न सकने से वह एक कदम पीछे हट गया। उसकी आँखें भी झुक गईं। गृहिणी ने धीमे, किंतु तीखे लहजे में कहा—तो तुम हो विनय, भले घर के लड़के होकर, दूसरों की बहू-बेटियों की आबरू क्यों लेते हो?

"आबरू कैसे लेता हूँ चाची? मैं जरा नीलू के साथ नदी तक घूमने चला गया था?"

"जवान, ब्याही हुई, पराई बेटियों के साथ इसी तरह घूमा जाता है? तुम्हारी अपनी कोई बहिन-बेटी नहीं है क्या?"

विनय को क्रोध आ गया, पर वह शान्त खड़ा रहा। नीलू ने कहा—विनय भैया के साथ तो मैं सदा ही घूमने जाती रही हूँ, माँ?

"और सदा ही घूमती भी रहोगी, सदा दूध-पीती बच्ची बनी रहोगी, अँग्रेजी किताबों में तुमने यही बातें पढ़ी हैं?

"बेशक, अङ्ग्रेजी किताबों को पढ़कर मैं समझ गई हूँ, कि स्त्री होने ही से में कीड़ा-मकोड़ा नहीं हो गई हूँ। मैं मनुष्य हूँ, मुझे स्वतंत्रता से जीने का हक है!"

"इन किताबों को मैं आज ही आग लगा दूँगी।"

"कहाँ तक आग लगाओगी, माँ! बाजार इन किताबों से पटा पड़ा है, फिर लाखों नित नई छपती भी रहती हैं।

एक जोर से हँसने की गम्भीर ध्वनि से कमरा भर गया, और उसके साथ ही—"ब्रेवो! नील्, क्या बात निकाली है, माँ के तर्क को एकदम पछाड़ दिया!" सब ने देखा रायसाहब हँसते-हँसते लोट-पोट हो रहे हैं—"भई वाह, खूब कहा, नील्। कहो, अब तुम कहाँ तक आग लगाओगी इन किताबों में?" राय साहब ने देखा, गृहिणी की आँखों से झरझर गङ्गाजल बरस रहा है। उनका सहज प्रसन्न मुख भादों की अँधेरी रात के समान गम्भीर हो रहा है, अपनी हँसी को एक ओर रख, वे नील् की ओर देख कर बोले—कह री पागल, माँ से बहुत झगड़ा किया है न तूने?

"तो उन्होंने मेरी दराज खोली क्यों, मेरे प्राइवेट कागज छुए क्यों?"

राय साहब ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से गृहिणी की ओर देखा। इसी बीच कुमुदनी ने जीजा जी के आने की सूचना दी। समाचार सुनते ही गृहिणी अपना अंचल सम्हाल कर रसोई घर में चली गई। राय साहब ने हड़बड़ा कर इधर-उधर देखा। वे विनय से कुछ कहा चाहते थे, पर वह न जाने कब खसक गया था। अब वे—वह कमरा खोलो, सामान उतारो, यह करो, वह करो—कहते, व्यस्त भाव से बाहर के बैठक की ओर चले गये। नील् क्रोध से बेबस-सी हो पलङ्ग पर औंधे मुँह पड़ रही।

२

राय साहब नीचे आकर अकारण ही शोर मचाने लगे। उन्होंने जोर-जोर से चिल्ला-चिल्ला कर नौकरों को पुकारना शुरू किया। मालिक को चिल्लाता सुन, नौकर दौड़ते आकर मालिक के चारों ओर आ जुटे। उन्हें यों खड़ा देख रायसाहब ने झल्ला कर कहा—"अरे बेवकूफों, यह तुम खड़े-खड़े मेरा मुँह क्या ताक रहे हो? देखते नहीं जमाई बाबू आये हैं? यह काम का वक्त है या यहाँ खड़े-खड़े मेरा मुँह ताकने का।" नौकरों ने परस्पर ताक कर देखा—वे समझ ही न पाये कि उन्हें आखिर करना क्या चाहिए? फिर भी वे इधर-उधर दौड़-धूप करने लगे। घर भर में धूम मच गई। इसी बीच महेन्द्रनाथ ने हँसते हुए आकर राय साहब की चरण-रज ली। रायसाहब ने आनन्द विभोर हो, उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया और उनके दोनों कन्धे पकड़ कर हिलाते हुए कहा—बहुत अच्छे, खूब तगड़े हो रहे हो, विलायत की आबहवा तुम्हें खूब माफिक आई न? मैंने क्या कहा था? अजी विलायत की क्या बात है? बादशाहों का मुल्क ठहरा। रही हिन्दुस्तान की बात, क्या कहें, एकदम जङ्गली मुल्क है, मारे गर्मी के नाक में दम रहता है। अच्छा, इस बार क्यों न नैनीताल का एक ट्रिप लगाया जाय। तुम्हारी क्या राय है? नीलू को नैनीताल बहुत पसन्द है, उसका बस चले तो वह दिन-रात घोड़े पर चक्कर लगाती रहे। घोड़े की पीठ पर खाय और उसी पर सोये। राइडिंग का उसे बेहद शौक है। भई, चाहे जो कुछ हो, हमारी नीलू है बड़ी बहादुर। आज अभी उसकी माँ से एक झड़प हो गई, वह

पछाड़ा कि जिसका नाम ! दलीलों में उसे कौन पा सकता है? उसने बी० ए० में लाजिक पढ़ी है न, फिर बेटी किसकी है, जानते हो ?

एक ही साँस में भिन्न-भिन्न विषयों पर ऐसा लम्बा लेक्चर देकर राय साहब जोर से हँस पड़े, फिर एकाएक उन्होंने चिन्तित-सा होकर कहा—"मगर वाह ! मैं भी कहाँ का चर्खा ले बैठा—"अरे भाई ! भीतर चलो, कपड़े बदलो, हाथ-मुँह धोओ, कुछ खाओ-पिओ"—इतना कहकर उन्होंने घबरा कर इधर-उधर देखा, फिर क्रोध में भर कर कहा—देखा तुमने नौकरों की बदमाशी? सब हरामखोर हैं, देखो काम के वक्त एक भी नहीं। मगर भई खुदा के लिए तुम भीतर तो चलो।

मगर महेन्द्रनाथ भीतर जाँय तो कैसे जाँय? रायसाहब जो दर्वाजा रोके खड़े थे। उन्होंने हँस कर कहा—चलिये फिर, आप ही तशरीफ ले चलिये।

भीतर आकर रायसाहब धम्म से एक सोफे पर पड़ रहे। एक दूसरे सोफे पर महेन्द्र बैठकर उनकी लच्छेदार बातें सुनने को मुस्तैद हो बैठे। रायसाहब ने एक सिगार उठाकर सिगार-केस महेन्द्र के आगे बढ़ाते हुए कहा—पीयो भई, यह झूठमूठ का लिहाज-शर्म मैं पसन्द नहीं करता, फिर तुम तो बिलायत हो आये हो, यह सब हिन्दुस्तानी चाल दो कौड़ी की है।

महेन्द्रनाथ ने सिगार-केस पीछे को ढकेलते हुए धीरे से कहा—मगर मैं तो पीता ही नहीं।

"सच, यह तो बहुत ही अच्छा है, बड़ी खराब चीज है, मगर मुझसे नहीं छूट सकती। जानते हो कब से पीता हूँ? बत्तीस बरस से। समझे, तब तुम तो पैदा भी नहीं हुए थे। हाँ; तुम्हारे पिता...ओह अलबत्ता वे शेरदिल आदमी थे।" रायसाहब ने

एक साँस खींचकर कहा—"अब ऐसे आदमी कहाँ? तो फिर मेरी राय में परसों नैनीताल को कूच कर दिया जाय। तुम्हारी क्या राय है? नीलू चाहती है, वहाँ से पैदल एक ट्रिप अल्मोड़ा तक हो।"

महेन्द्रनाथ ने संकुचित होकर कहा—विचार तो आप का बहुत अच्छा है, मगर मुझे सिर्फ तीन दिन की छुट्टी है। आज कल और परसों। मुझे कालेज ज्वाइन करना होगा। अम्मा ने विदा कराने की आज्ञा दी, सो सेवा में हाजिर होना पड़ा।

"खासे रहे"—रायसाहब ने कुछ निराश स्वर मे कहा—"तुमने तो भाई सब गुड़ गोबर कर दिया। तुम्हारी अम्मा का खत मुझे मिला था। मैंने तभी तुम्हें लिख दिया था कि अभी कुछ दिन नीलू यहाँ और रहेगी।"

"इसमें उन्हें आपत्ति न थी, पर वे एकाएक बीमार हो गई, इसी से..."—महेन्द्र ने नम्रता से कहा।

"तब तो लाचारी है। मगर वाह, मैं भी क्या बेवकूफ हूँ। अरे भाई इसी तरह जीन-काठी कसे बैठे रहोगे? कपड़े बदल लो"—उन्होंने एक साथ ही दो-तीन नौकरों को पुकारा। फिर कहने लगे—तुमने कहा न कि तुम्हारी माँ कुछ बीमार हैं! क्या हुआ है उन्हें? कुछ ज्यादा...।"

"जी नहीं, कुछ ज्यादा नहीं। मगर वृद्ध शरीर है, अधिक समय पूजा पाठ और नित्य कर्म में जाता है। मैं जब से आया, तब से लाख कहने पर भी वे मानती नहीं। खाने-पीने, कपड़े-लत्ते के पचास झंझट करती रहती हैं। इसी से मैंने सोचा कि अब इन्हें अकेले रहने देने में तकलीफ ही है।"

"भाई महेन्द्र! तुम्हारी माँ क्या हैं। हीरा हैं हीरा। नीलू का बड़ा भाग्य है कि वह उनकी सेवा करेगी।"—एकाएक रायसाहब

का गला भर आया। वे कहने लगे—"मगर वह मर्दानी तबियत की लड़की है। सच बात तो यह है कि उसे मैंने ही बिगाड़ा है। माँ तो उसे कुछ करने देती ही नहीं, अभी वह है ही कै दिन की। मिजाज उसका तेज़ है। देखो भाई, नीलू पर हमेशा ही क्षमा-भाव रखना, उसका दिल न तोड़ देना। वह एक हौसले वाली लड़की है।"—रायसाहब की आँखों में आँसू आ गये। मगर वे उन्हें रोकने के लिये महेन्द्रनाथ की ओर देखकर ही-ही करके हँस दिये। महेन्द्रनाथ जवाब न दे सके। हँस भी न सके। वे चुपचाप धरती की ओर ताकते रहे।

इसी समय नौकर ने कहा—हुजूर, गुसलखाने में सब सामान लैस है।

रायसाहब ने कहा—उठो भाई, नहा लो और कपड़े बदल लो, जिससे थकान उतर जाय।

महेन्द्र उठकर गुसलखाने में चले गये। स्नान कर एक सिल्क का कुरता और महीन धोती पहन कर ज्योंही वे आकर बैठे कि कुमुदनी ने सहमते हुए, जैसे संसार की लाज वह अपने आँचल में बाँध लाई हो, आकर कहा—जीजा जी, चलिए अम्माँ आप को बुलाती हैं।

महेन्द्रनाथ ने मुस्करा कर साली की ओर देखा और रायसाहब से आज्ञा ले भीतर चले गये।

२

नीलू ने उस दिन कुछ नहीं खाया। क्रोध और क्षोभ से भरी वह दिन भर अपने कमरे में पड़ी रही। उसने माँ का घोर अपमान किया था। उस माँ का जिसने उसे इतना लाड़दुलार करके पाला पोसा। रह-रह कर उसे माता के स्नेह और प्यार की बातें याद आने लगीं। वह सोचने लगी—अब भी वे कितना उसे प्यार करती हैं, उसी माँ को उसने गाली दी और न कहने योग्य बातें कह दीं। यह सब याद करके उसका हृदय हाहाकार करने लगा। वह तकिये में मुँह छिपाकर फूट फूट कर रोने लगी, परन्तु उन्होंने मेरे कागज छुये क्या? पश्चिमी सभ्यता में विकसित उसका मन इसी बात पर माँ से विद्रोह कर उठा। वह किसी तरह भी माँ को क्षमा न कर पाती थी। रधिया की माँ और महरी दोनों ही ने उससे भोजन के लिये कहा, पर उसने भोजन नहीं किया। बेटी की अतर्कित धर्षणा से मर्माहत हो, गृहणी, पति और दामाद के भोजन कर चुकने पर, एक शीतलपाटी बिछाकर बिना खाये चुपचाप पड़ गई। बेटी ने खाना नहीं खाया, आज वह दुःखी और नाराज है, और यह सब उसी के कारण। यह सोच कर प्रेममयी जननी का मन क्षुब्ध हो रहा था। वह कब से सोच रही थी कि दामाद के आने पर मेरी नीलू अमुक साड़ी पहनेगी। सिंगार करा कर मैं दोनों की जोड़ी आँख भर कर देखूँगी। वह अपने को कोस भी रही थी, पर बहुत खोज-ढूँढ़ करने पर भी उसे अपना अपराध नहीं मिल पाया था। इसी से वह बेटी की ओर से बहुत व्यथित होने पर भी उसे मनाने नहीं गई।

घर में अब सिर्फ़ दो ही आदमी रह गए थे, जो आनन्दमग्न थे एक रायसाहब और दूसरी कुमुदनी। रायसाहब दामाद का दिन भर दिमाग चाटते रहे। और कुमुदनी भौंरे की तरह उनके चारों ओर मँडरा रही थी। इन दोनों के कारण महेन्द्रनाथ का दिन मजे से बीत गया।

सन्ध्या होने पर गृहस्थी की व्यग्रता बढ़ने लगी। वह चाहती थी कि नीलू का वह सिंगार करे। भला दामाद उसे ऐसे वेष में देखकर क्या कहेंगे? परन्तु इसपर भी उसके आत्म-सम्मान ने बेटी से कुछ कहने को रोक दिया। गृहणी के आदेशानुसार रधिया रात में महेन्द्रनाथ को नीलू के कक्ष में पहुँचा गई। गृहणी के आदेश के अनुसार ही वह पहले नीलू को इस सम्बन्ध में बहुत सी बातें समझा-बुझा गई थी। उसने नीलू से सिंगार-सवाँर करने को भी बहुत कुछ कहा-सुना, पर सब कुछ सुनकर भी नीलू चुप रही। उसने न किसी बात का विरोध किया न अनुमति प्रकट की, न ही उसने शृँगार किया। रधिया, पढ़ी-लिखी बिटिया के दुरूह चरित्र को समझने में असमर्थ होकर चली गई और दामाद को उनके सोने का स्थान बता कर अपनी भारी जिम्मेदारी से मुक्त हुई।

महेन्द्र कुछ सकुचाते हुए नीलू के शयन-गृह में गये। दर्वाजा खुला था; पर पर्दा पड़ा था। उसे जरा हटाकर वे कमरे में जा खड़े हुए। नीलू पलङ्ग पर औंधी पड़ी कोई पुस्तक पढ़ रही थी या पढ़ने के मिस अपना उद्वेग रोक रही थी। महेन्द्रनाथ को एकाएक सामने खड़ा देख वह हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई। उसने महेन्द्रनाथ को न तो प्रणाम किया न कुछ बोली ही। महेन्द्रनाथ एकाएक असमञ्जस में पड़ गये। नीलू को उन्होंने सिर्फ विवाह के समय क्षण भर को देखा था। और उससे पहले एक बार विवाह से पूर्व। पर आज उस बात को तीन वर्ष बीत गये। ये तीन साल उन्होंने यूरोप में व्यतीत

किये थे। वे यद्यपि वहाँ अध्ययन के लिये गये थे; परन्तु उन्होंने भ्रमण भी बहुत किया। सौन्दर्य और नवीन जीवन की भूमि से महेन्द्रनाथ बहुत कुछ सीख आये। उन्हें यूरोप के भ्रमण से मालूम हुआ कि उनका देश भारत, उस वैभव और उन्नति से परिपूर्ण भूमि की अपेक्षा कितना गौरवहीन है? परन्तु वे यूरोप की लाखों सुन्दिरियों के मुक्त और स्वच्छन्द सहवास में रहकर भी नीलू की शोभनीय मूर्ति को न भूल सके। वही नीलू उनकी दृष्टि में करोड़ों यूरोप की स्त्रियों की अपेक्षा गौरवशालिनी थी। उसे प्यार करने, उसे पत्नी बनाने और उसके सहवास के सुख का स्मरण करने में महेन्द्र को कितनी बार सुखातिरेक हुआ है, यह कहना अशक्य है। आज इतने दिन बाद नीलू से उनकी फिर भेंट हुई है, बाधाहीन एकान्त स्थान में। जीवन में प्रथम बार यह क्षण कितना बहुमूल्य था। महेन्द्र एक बार इन सब बातों पर विचार कर गये। उन्होंने मुस्करा कर कहा—मैंने तुम्हें आकर असुविधा में डाल दिया नीलू।

नीलू कुछ बोली नहीं, उसने एक बार महेन्द्रनाथ की ओर देखा और सिर नीचा कर लिया।

महेन्द्र ने फिर कहा—क्या बोलोगी भी नहीं, क्यों असुविधा हुई न?

"ऐसी कुछ असुविधा नहीं हुई।"

"फिर मुझसे बैठने को भी न कहोगी?"

"बैठिए।"

महेन्द्रनाथ ने एक क़दम आगे बढ़कर हँसते हुए कुर्सी खींच कर कहा—तुम भी तो बैठो।

बिना ननुनच किये नीलू एक कुर्सी पर बैठ गई। महेन्द्र ने दूसरी कुर्सी आगे खींचकर उसपर बैठते हुए कहा—नीलू! यह घर

तो तुम्हारा ही है, कुछ अपरिचित नहीं, फिर इतने सङ्कोच की क्या ज़रूरत है ?

"आप तो अपरिचित हैं" नीलू ने साफ़ शुद्ध स्वर में कहा।

महेन्द्र को ज़रा धक्का लगा, पर वे हँस दिये। उन्होंने ज़रा अपनी कुर्सी और आगे खसका कर कहा—"सच कहती हो, इसमें अपराध मेरा ही है, तीन वर्ष मैं तुमसे दूर रहा। यह मेरी बड़ी निठुराई थी, पर तुम्हें सुनकर खुशी होगी कि मुझे प्रतिष्ठा सहित डाक्टर का डिप्लोमा मिल गया।"—इतना कहकर महेन्द्र क्षण भर चुप रहकर फिर बोले—"पर नीलू, मैंने एक क्षण भी तुम्हें भुलाया नहीं। जैसे तुम सदैव मेरे साथ ही रहीं। मैंने तुम्हें सिर्फ क्षण भर ही, दो बार देखा था। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे जन्म-जन्मान्तरों से हम परिचित हैं, और अब अचानक आ मिले हैं।"

नीलू चुप निर्विकार बैठी रही। महेन्द्र अपनी बात पूरी कर गौर से उसकी ओर देखते रहे। अब उन्होंने देखा कि नीलू के बाल बिखरे और रूखे हैं। साड़ी मैली और वेश अस्त व्यस्त है। उन्हें रायसाहब की बात का ख्याल आया, उन्होंने हँसकर कहा—नीलू, मालूम होता है, अम्माँ से गहरी ठनी है। मुझे सब मालूम हो गया था।

इस बात पर नीलू ने बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर महेन्द्रनाथ की ओर देखा, पर बोली कुछ भी नहीं।

महेन्द्रनाथ कहते गये, आखिर झगड़े का कारण क्या था नीलू, अम्माँ तो बहुत अच्छी हैं।

नीलू अब बोली। उसने कहा—क्षमा कीजिये, मैं इन घरेलू मामलों में किसी से बात-चीत करना पसन्द नहीं करती।

महेन्द्रनाथ अवाक् रह गये। कुछ क्षण स्तब्ध रहकर उन्होंने कहा—क्या बात है नीलू, क्या मैं इतना गैर हूँ ? मैं तुम्हारा पति हूँ।

"मैं नहीं जानती'—नीलम ने निरुद्वेग स्वर में कहा।

महेन्द्रनाथ ने कुछ देर नीलू की ओर ताकते हुए कहा—कौनसी बात तुम नहीं जानती नीलू।

"आप जो कुछ कह रहे हैं।"

"मैं तो यही कह रहा हूँ, कि मैं गैर नहीं हूँ, तुम्हारा हूँ। तुम्हें कोई दुःख है तो तुम्हें वह मुझसे कहना चाहिए।"

"मुझे दुःख यही है कि आप जो मुझपर अपना अधिकार लाद रहे हैं उसके सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जानती।"

"हम लोगों का ब्याह हुआ था नीलू, तुम गुड़िया-सी सज-सजा कर आई थीं; मेरे हृदय में एक नई अभिलाषा उत्पन्न हुई थी। अतिमधुर, अतिप्रिय।"

"एक रस्म हुई थी; यह याद है, पर उसका मतलब क्या था, तब मैं समझ न सकती थी, और अब कोई समझा नहीं सकता।

"क्या कहती हो तुम नीलू! मालूम होता है, तुम्हारी तबियत बहुत खराब है।"

"तबियत कुछ खराब जरूर है; पर मेरी विचार-शक्ति बिलकुल दुरुस्त है।"

"तो फिर नीलू अपने महेन्द्र को तुम अपरिचित कैसे कहती हो?"

"आपको अगर बुरा लगा हो तो मैं माफ़ी चाहती हूँ; पर जो बात सत्य है वह मुझे कहनी चाहिए।"

"तब तुम हृदय से यह कहना चा ती हो कि मैं तुम्हारे लिए अपरिचित हूँ?"

"निस्सन्देह! क्या कभी आपने मुझसे बात-चीत की है? मेरा आपका परिचय हुआ है? आपके विचार क्या हैं, और मेरे क्या हैं, यह बात एक दूसरे को मालूम है? क्या ऐसी कोई बात

है कि जिससे हमलोग एक दूसरे के निकट घनिष्ठ हो सकें! आपके चरित्र, स्वभाव और विचारों से में अपरिचित हूँ और आप मेरे से। फिर में यदि कहूँ कि आप अपरिचित हैं तो इसमें आपको असंतुष्ट न होना चाहिये।"

महेन्द्रनाथ कुछ देर चुप बैठे रहे। उनकी इच्छा कुछ कहने की हुई उन्होंने आँखें उठाई और नीलू के चेहरे को देखा, जिसमें विवाद की तत्परता स्पष्ट हो रही थी। उन्होंने मन्द मुस्कान के साथ धीरे से कहा—तुम ठीक कहती हो नीलू, मैंने तुम्हें नाहक कष्ट दिया, तुम मुझे क्षमा करना।" इतना कहकर वह धीरे से उठे और कमरे के बाहर हो गए।

कमरे से उनके बाहर होते ही नीलू की जैसे जान निकल गई हो, वह पागल की भाँति दो कदम भागी—वह चाहती थी कि चिल्ला कर उन्हें रोके और कहे, मैं क्या बक गई हूँ, मैं पागल हो गइ हूँ, मैंने उन्हें क्या कह दिया? उसके रक्त में जैसे आग लग गई थी, पर वह महेन्द्र को पुकार न सकी। वे चले गये। उसी धीर गम्भीर चाल से। नीलू उस कुर्सी पर गिरकर, जिसपर महेन्द्रनाथ अभी बैठे थे फूट-फूटकर रोने लगी। वह रात भर रोती रही। उसी हालत में उसे कुछ कुछ झपकी आती और वह अपने सामने महेन्द्रनाथ की मुस्कराती मूर्ति देखती। वह जैसे कह रही थी—नीलू, क्या मुझे नहीं पहिचान सकीं? और नीलू मानों कह रही थी—पहचानती हूँ—पहचानती हूँ, तुम मेरे पति हो—पति, प्राणनाथ। इसके बाद ही उसकी आखें खुलतीं। वह आखें फाड़-फाड़ कर इधर उधर देखती और उसी कुर्सी पर मुँह रख रोने लगती। वह उसकी सुहागरात थी और वही कुर्सी उसके अभिसार का केन्द्र था।

४

दूसरे दिन सुबह रायसाहब अपनी आदत के विपरीत बहुत जल्द उठ बैठे। और वे सीधे गृहिणी के पास भीतर चले गये। गृहिणी अभी सोकर उठी थीं। कल की घटना से उनका मन मलिन हो रहा था। रायसाहब ने कहा—सुनती हो, दामाद तो आज ही जाना चाहते हैं, उनकी छुट्टी ही नहीं है!

" छुट्टी नहीं है तो लाचारी है।"

"वे नीलू को भी ले जाना चाहते हैं!"

"ले जायँ, इसमें कहने की क्या बात है, आखिर आये भी तो इसीलिए हैं।"

"तुमने कह दिया ले जायँ, आज-आज में तैयारी कैसे होगी?"

"सब हो जायगी।"

गृहिणी की बात सुनकर रायसाहब कुछ देर तक विमूढ़ बने रहे। उन्हें आशा नहीं थी कि गृहिणी नीलू को भेजने के लिए इतनी आसानी से राजी हो जायगी। उन्होंने कहा—पर सुनो तो, नीलू चली जायगी तो हम कैसे रहेंगे?

रायसाहब का कण्ठ-स्वर काँपा, आँखें गीली हो गयीं; परन्तु गृहिणी ने उधर ध्यान न देकर कहा—बेटियाँ किसी के घर में हमेशा रहती हैं? फिर सयानी बेटी अपने घर जाय, यही ठीक है।

रायसाहब ने खिन्न स्वर से कहा—मालूम होता है तुम नीलू से बहुत नराज हो गई हो। हमारी नीलू बहुत अच्छी है, रही

कभी-कभी लड़ने की बात, सो उसका कुछ ख्याल न किया करो। तुम्हीं ने उसे इतनी से इतनी किया है। उसके बिना हम नहीं रह सकते हैं? नहीं, मैं दामाद से कहे देता हूँ कि और कुछ महीने वे उसे छोड़ जायँ।

पिता की कातरता ने भी माता के हृदय को स्पर्श नहीं किया। उसने निर्मम भाव से कहा—ये सब पागलपन की बातें रहने दो और जो-जो जरूरी चीजें चाहिए मँगा दो। मैं सब ठीक-ठाक कर लूँगी। वे कौन-सी गाड़ी से जायेंगे?

"शाम की गाड़ी से।"—रायसाहब इतना कह कर खिन्न मन से वहाँ से हट गये। नीलू को वे अजहद प्यार करते थे। उसके बिना वे कैसे रहेंगे, यह वे सोच भी नहीं सकते थे। गृहिणी की निर्ममता उन्हें बहुत खली। परन्तु गृहिणी ने अपने कर्त्तव्य का ध्यान किया था और वह नीलू की उच्छृंखलता से बहुत ही चिन्तित हो उठी थी। नीलू पति के संरक्षण में रहे, यही गृहिणी ने अच्छी तरह समझ कर, बिना सङ्कोच नीलू को भेजने का दृढ़ निश्चय किया था।

रायसाहब ने बैठक में आकर देखा, महेन्द्रनाथ एकाग्र भाव से उस दिन का अखबार पढ़ रहे हैं। रायसाहब की कल वाली आनन्दमूर्त्ती अब नहीं थी। फिर भी उन्होंने मन का बोझ दबा कर कहा—खासे रहे, तुम यहाँ हो, खैर तो अब यही तै हुआ है कि तुम नीलू को आज ले जाओगे।

महेन्द्र ने कुछ रुक कर कहा—आप को अगर कुछ असुविधा हो तो जाने दीजिये। फिर एक-दो माह बाद देखा जायगा।

रायसाहब अपने को न रोक सके। उन्होंने कहा—असुविधा कुछ नहीं, पर भाई, बात यह है कि नीलू के बिना हम रहेंगे कैसे? सब सूना हो जायगा। मगर उसका जाना भी जरूरी है क्योंकि तुम्हारी माता की आज्ञा है।

महेन्द्र ने धीमे स्वर में कहा—आप की इच्छा न हो तो रहने दीजिए। अम्मा को मैं समझा लूँगा।

रायसाहब एकाएक प्रसन्न हो गये। "यह बात है ? तब तो बहुत अच्छा है। मैं अभी उसकी माँ को कह देता हूँ। ठहरो, मैं यहीं उसे बुलाता हूँ।" रायसाहब ने एक नौकर को बुला कर गृहणी को बुलाने को कहा ! उनके आने पर उन्होंने कहा—"सुनती हो, सब ठीक-ठाक हो गया है, हमारी नीलू अभी नहीं जायगी। दो-चार महिने बाद देखा जायगा।

गृहिणी ने रूखे स्वर से कहा—सो किसलिये ?

"अभी मैंने इनसे कहा, इसलिये। तुम भी अजब बहस करती हो।"

"स्यानी लड़की है, उनकी माता बीमार हैं, उन्होंने बुलवाया है। सो हमें यह शोभा नहीं देता कि उनकी आज्ञा टालें। नीलू को वहाँ जाकर अपनी सास की सेवा करनी चाहिये।

रायसाहब और महेन्द्र दोनों ही, कुछ न कह सके। फिर भी साहस करके महेन्द्र ने धीमें स्वर से कहा—मगर आपको भी किसी तरह का कष्ट न हो, इसी से·······

गृहिणी ने बीच ही में बात काटकर कहा—हमें कष्ट कुछ नहीं, हमारे लिए आनन्द का दिन है कि नीलू अपने घर जायगी। पति और सास की सेवा से अपना जन्म सफल करे, जिससे हमलोगों का, बेटी का माता-पिता बनना सार्थक हो।"—यह कह गृहिणी अपनी आँखों से उमड़ते आँसुओं के प्रवाह को रोकने में असमर्थ हो, तेजी से वहाँ से चली गई।

दिन भर नीलू की बिदाई की खटपट में गया। बाजार से कपड़े लत्ते, मिठाई, फल, मेवे आये। कुछ पकवान घर में बने। सब कोई धूम-धाम में व्यस्त रहे; सिर्फ रायसाहब अकेले अपनी बैठक में

बैठे कुछ सोचते और हुक्का गुड़गुड़ाते रहे। वे न किसी से कुछ बोले न मिले। महेन्द्र ने वह दिन लाइब्रेरी में चिट्ठियाँ लिखने में बिताया। चिट्ठियाँ जरूरी सचमुच थीं या मनोद्वेग को रोकने के लिये वे दिन भर वहाँ बैठे रहे, यह भगवान् जाने ! गृहिणी काम काज में व्यस्त रहीं, पर उनका मन हाहाकार कर रहा था। नीलू अपने कमरे में बैठी रही। आज उसे जाना होगा। उससे पूछा भी नहीं जा रहा है। इससे उसका मन क्रोध और क्षोभ से व्याकुल हो रहा था। पिछले दिन माँ से और रात्रि को पति से असाधारण रूप में पेश आने के कारण उसके मन में आघात लगा था, वे अपने ही व्यवहार से उसे अनुचित प्रतीत हो रहे थे। पर वह यह निर्णय न कर सकती थी कि उसका अपराध कितना है। वह अपनी शिक्षा, संस्कृति और स्वतन्त्रता एवम् अधिकारों के विषय में बहुत कुछ सोचती रही। पर कल से घर भर में किसी ने उससे कुछ न पूछा। अपनी इस उपेक्षा से वह मर्माहत होकर बारम्बार रोती रही। आज भी उसने भोजन नहीं किया। और गृहिणी ने भी उसे मनाया नहीं। उन्होंने स्वयं भी भोजन न किया।

तीसरे पहर नीलू एकाएक पिता के कमरे में जा खड़ी हुई। उसके बाल रूखे, कपड़े मैले और होंठ सूखे थे। रायसाहब को पुत्री और माता के बीच चलते गहरे द्वन्द्व का पता न था। नीलू को इस वेष में देख जरा विचलित हुए; पर उन्होंने समझा नीलू को गृह छोड़ जाने के कारण जो उद्वेग हुआ है, इसीसे उसका मन मलीन हो रहा है। उन्होंने हँस कर कहा—"नीलू, तुम मुझे रोज खत भेजना। वह भी छोटा-मोटा नहीं, खूब लम्बा, हाँ, जरा इधर तो आओ। देखो माँ की तरह सास से मत लड़ना"—इतना कहकर रायसाहब अपने उद्वेग को दबाने के लिये ही-ही करके हँस दिये।

नीलू ने आगे बढ़कर कहा—मगर मैं जा कहाँ रही हूँ।

"अपने घर बेटी और कहाँ ?"—बहुत रोकने पर भी रायसाहब की कण्ठ-लहरी गद्गद् हो गई।

"बिना मुझसे पूछे ही सब तैयारियाँ हो रही हैं ?"

"पगली बेटी ! ऐसी बातें भला पूछी जाती हैं ?"

"मगर मैं नहीं जाऊँगी ?

"तो तुम नीलू, लड़का क्यों नहीं हुई, लड़की क्यों हुई बेटी ?"—रायसाहब की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे। उन्होंने बेटी को खींच कर छाती से लगा लिया और कहा—"तुझे भेजते मेरा कलेजा फटता है। पर बेटी, सभी बेटियाँ ससुराल जाती हैं। तुझे भी जाना होगा। मैं चाहता था कुछ दिन रोक लूँ, पर इससे क्या होता है ? तेरे बिना यहाँ जैसे अब सूना हो जायगा।"

कुछ देर चुप रहकर रायसाहब हँस दिये। उन्होंने फिर मन बदल कर कहा—बेटी, आज यह कहती हो, कल इस बूढ़े बाप और पगली माँ को याद भी न करोगी।

रायसाहब हँसना चाहते थे, पर रो दिये। नीलू बहुत कुछ विद्रोह करने आई थी, पर पिता की हालत देख उससे कुछ कहते न बना। वह रोती हुई वहाँ से भाग गई और कमरे में जा भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया।

बड़ी देर तक वह रोती रही। दिन ढल गया था। एकाएक गृहिणी ने दरवाजा ढकेल कर कहा—दरवाजा खोल दे नीलू।

नीलू क्षण भर तो चुप बैठी रही। फिर उसने चुपचाप द्वार खोल दिया। बेटी का यह रूप देख माता का हृदय द्रवित हो गया। उसने कहा—मूर्ख माँ को माफ कर बेटी, मेरी नीलू !

जैसे गाय को देख बच्चा दौड़ता है, उसी तरह नीलू दौड़ कर माता की छाती से लग गई। जब से उसने माँ का अपमान किया था वह खुद माँ से माफी माँगने को छटपटा रही थी, सिर्फ उसका

अभिमान उसे रोक रहा था। अब माँ के वे कातर वचन सुन वह द्रवित हो गई। दोनों नारी-हृदय देर तक रोते रहे।

माता ने कहा—"बेटी, मैं नहीं जानती कि तूने क्या-क्या पढ़ा है; पर हमलोग हिन्दू नारी हैं, जैसी नाजुक हमारे हाथ की काँच की चूड़ियाँ हैं वैसी ही नाजुक हमारी इज्जत भी है बेटी, उसका बड़ा मोल है, औरत को पराये घर के सभी लोगों की मालकिन बनना होता है। इससे वह जितना अपनी आबरू का ख्याल करेगी उतनी ही मालिकनपना सजेगी।"—गृहिणी ने यह कहकर बेटी को कसकर छाती से लगा लिया।

नीलू ने रोते-रोते कहा—माँ, वहाँ मेरा कौन है, तुम मुझे वहाँ न भेजो।

ऐसी बात कोई कहता है बेटी? तुम बच्ची हो। पति को तुमने शायद अभी नहीं पहचाना है; पर माँ की बात ध्यान में रक्खो। मैं कहती हूँ उनकी सदा सेवा करना और उनकी आज्ञाकारिणी बनी रहना, उनसे मान न करना। रस में विष कभी न घोलना। इससे तुम उनकी प्राणों से प्रिय और परम विश्वासिनी बन जाओगी। तब देखोगी कि तुम्हें हीरा आदमी मिला है। बेटी, हीरे अभागों को भी मिल जाते हैं; पर वे उसे खो देते हैं। तुमसे मेरा बारम्बार यही कहना है कि पति को खो न देना। तुममें विद्या बुद्धि बहुत है। विवेक और विनय भी उत्पन्न करना—इसीसे तुम्हारा यह नारी जन्म धन्य होगा और हमारा जीवन भी सफल होगा।

गत दिवस माँ से उद्दण्ड-व्यवहार के कारण नीलू लज्जित थी। फिर इस समय माता ने जिस वेदनापूर्ण समुद्र-गम्भीर स्वर में बातें कहीं, उनसे मतभेद होने पर भी नीलू से कुछ न कहा गया। अचानक वह आज्ञाकारिणी हो गई। गृहिणी ने बेटी को अपने हाथ से

से उबटन लगा कर नहलाया, केश शृंगार किया। नये वस्त्र पहनाये। और परम हठ करके अपने हाथ से खाना खिलाया। यह सब करते हुए, उसने नीलू के जन्म से अब तक का सारा इतिहास सुना दिया, जिससे नीलू गलकर मोम हो गई और जब गृहिणी उसे खिला-पिला कर उसके कमरे में भेजकर लौटने लगी, तो नीलू बिजली की तरह लपक कर माँ से लिपट गई। एक बार फिर दोनों नारियों ने प्रेमाश्रु प्रवाहित किये।

उसी रात नीलू ससुराल चली गई। महेन्द्र से उसका इस बीच साक्षात नहीं हुआ।

५

महेन्द्र जब नीलू को जनाने सेकिण्ड क्लास के डब्बे में बैठा कर स्वयं बिना कुछ कहे सुने बराबर के डब्बे में जा बैठे तो नीलू जल-भुन कर खाक हो गई। उसने सोचा कि यह उसका सबसे बड़ा अपमान हुआ है। डब्बे में कोई तीसरा यात्री न था, अतः अकेला और सुनसान वह रेल का डब्बा उसे उस रात्रि के समय में अत्यन्त भयानक-सा प्रतीत हुआ। वह सोचती थी कि इस बार वह पति को जरा ठीक तौर पर देखेगी, पहचानेगी और गत रात की कैफियत देगी। पर महेन्द्र ने उसे अवसर ही न दिया, इसी से वह खीझ गई। उसने डब्बे की सब बत्तियाँ खोल दीं और दोनों पंखे खूब तेजी से चला दिये। इसके बाद वह अनमनी-सी अँधेरे में मुँह निकाल कर बैठ गई। प्रहार करने के साधन उसके पास थे ही नहीं। गाड़ी चल दी और स्टेशनों पर ठहरती हुई रास्ता काटने लगी। महेन्द्र सोये नहीं—वे प्रत्येक स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही एक बार नीलू को देख आते और चले जाते, नीलू को इसका पता भी न लगा। उसे ऐसा लगा कि वह सचमुच एक अपरिचित आदमी के साथ किसी अपरिचित स्थान की यात्रा कर रही है। परन्तु पति से परिचित होने का सुयोग तो उसी ने खोया था।

प्रातःकाल गाड़ी देहाती स्टेशन पर रुकी। असबाब सब नीलू के ही डब्बे में था। क्योंकि महेन्द्र ने तीसरे दर्जे का टिकट लिया था। वे सदैव तीसरे ही दर्जे में यात्रा करते थे। एक स्टेशन पहिले वे नीलू के डब्बे में आकर सामान ठीक-ठाक करने लगे। नीलू से भी उन्होंने कह दिया कि वह तैयार हो जाय; पर नीलू तो तैयार

बैठी ही थी, सुन कर चुप रही, बोली नहीं। थोड़ी ही देर में स्टेशन आ गया और महेन्द्र नीलू को उतरने का आदेश देकर स्वयं असबाब उतारने लगे, क्योंकि वहाँ गाड़ी कम ठहरती थी और कुली भी मिलना कठिन था, नीलू ने जब भारी-भारी ट्रंक उठाकर महेन्द्र को प्लेटफार्म पर पटकते देखा तो उससे न रहा गया। उसने कहा—क्या यहाँ कुली नहीं हैं!

'नहीं'—जल्दी में सिर्फ इतना ही महेन्द्र ने कहा। नीलू को उनका यह जवाब बहुत रूखा मालूम हुआ और उसने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। इतने ही में टिकटचेकर ने कहा—आपका, तुम्हारा टिकट सर्वेण्ट का है न?

महेन्द्र ने उसके टोन पर मुस्करा कर कहा—है तो?

"मगर तुम तो सेकिण्ड क्लास में सफर कर रहे थे।"

"नहीं, मैं सिर्फ पिछले स्टेशन पर सामान ठीक करने वहाँ चला गया था।"

"नहीं-नहीं, तुम·······"

टिकट-चेकर कुछ कहना ही चाहता था कि महेन्द्र ने बलिष्ठ मुट्ठी से उसकी लटकती हुई टाई पकड़ कर झकझोरते हुए कहा—'तुम' यहाँ कोई नहीं है, 'आप' कहो, समझे, नौकरी पाते ही पहले मुसाफिरों से भद्र-व्यवहार करना सीखो।

बेचारा चेकर एकदम घबरा गया। उसने देखा कि इस घूँसे से बचने ही में खैर है। वह वहाँ से बड़बड़ाता हुआ सटक-सीताराम हुआ।

नीलू ने आश्चर्य से पूछा—आपके पास थर्ड क्लास का टिकट है?

"जी हाँ?"

इस 'जी हाँ' ने जैसे नीलू को चोट पहुँचाई। उसने हाथ फैला कर कहा—देखूँ टिकट!

महेन्द्र ने दोनों टिकट दिखा दिये।

"यह तो सचमुच सर्वेण्ट का टिकट है।"

महेन्द्र ने मुस्करा कर कहा—वही ड्यूटी तो भुगत रहा हूँ।

नीलू को महेन्द्र की रसिकता अच्छी न लगी। उसने भौं में बल डाल कर कहा—आपको अपनी पद-मर्यादा का भी ध्यान नहीं है ?

"क्यों ? मैंने पद-मर्यादा के विपरीत क्या किया है ?'

'क,या आप थर्ड क्लास में सफर करने योग्य हैं ?"

"थर्ड क्लास में सफर करने योग्य कौन होते हैं ?"

"वे जिन्हें हम वेतन देकर अपनी सेवाओं में रखते हैं।"

क्षण भर महेन्द्र चुप रहे, फिर बोले—सच कहती हो तुम नीलू, हमेशा याद रखना—मैं भी वही हूँ !

"पर आपने यह टिकट खरीदा क्यों ?"—नीलू ने खीझ कर कहा।

"मैं हमेशा ही थर्ड क्लास में सफर करता हूँ।"

"फिर मेरे लिए सेकण्ड क्लास का टिकट किसलिए ?"

"तुम हमेशा ही सेकण्ड क्लास में सफर करती हो, बिलायत भी तो तुम इसी तरह गई थी।'

नीलू के पिता वैभवशाली थे और उन्होंने पुत्री के साथ ऊँचे दर्जे में ही तमाम यूरोप घूमा है ?

"निस्सन्देह, नीलू ! मुझे ऐसा ही करना ठीक मालूम हुआ।'

"शायद आप इससे अधिक खर्च नहीं कर सकते थे ?"

"खर्च कर तो सकता था, रुपये की तङ्गी के कारण नहीं, सिर्फ औचित्य के कारण ही.......।"

ओह समझ गई, बचत का आपको बहुत खयाल है।"—वह मुँह फेर कर खड़ी हो गई। महेन्द्र सबारी ठीक करने चले गये।

६

महेन्द्र के घरसे, नीलू के पिता की शानदार कोठी से कोई समता न थी। यह घर कच्चा तो न था, पर एक-मञ्जिला था। घर में सफाई और सादगी थी। फर्नीचर सादा और बहुत कम था। तख्त पर जनानी और मर्दानी बैठकें थीं। घर में महेन्द्र की माँ और एक दासी तथा एक कहार नौकर था। नीलू को यह घर पहली दृष्टि में बिल्कुल नहीं भाया। महेन्द्र ने सामान गाड़ी से उतरवा कर कहार से पूछा, रामधन! अम्माँ की तबियत कैसी है? तबतक मालकिन अपना रुग्ण कलेवर लिए बहू की अगवानी करने स्वयं ही शैय्या से उठ आईं। शुभ्र परिधान, शुभ्र केश से सज्जित शुभ्र मुख, एक कल्पित प्रतिभा-सा दीख रहा था। महेन्द्र ने कहा—नीलू अम्माँ हैं और उन्होंने आगे बढ़कर माता के चरणों में प्रणाम किया और कहा—"माँ, तुम उठी क्यों? चलो पलङ्ग पर लेटो, अब तबियत कैसी है?" वृद्धा ने हँसते हुए कहा—"लक्ष्मी बहू की ओर देखते ही मैं अच्छी हो गई। अब मैं पलङ्ग पर लेटूँगी नहीं!" उन्होंने बहू की ओर देखकर दोनों हाथ फैला कर कहा—"आओ बेटी, मेरी बेटी!" और नीलू प्रणाम करना भूल गई। वह किसी चलती-फिरती प्रतिमा-सी खिंच कर सास की छाती से जा लगी। वृद्धा की आँखों से आँसुओं की धार बह निकली। उन्होंने बहू को छाती से लगा कर कहा—"मेरे घर में तुमने आकर उजाला कर दिया बेटी, धन्य है तुम्हारी माँ जिसने तुम-सी लक्ष्मी को जना! उस घर को तुम सूना कर आईं—मेरा ही अपराध है, मैं बड़ी स्वार्थिन हूँ। बेटी को माँ से छीन लिया। पर बेटी, मेरी

हालत भी देखती हो तुम—एक बार तुम्हें आँख भर देखूँ यही मेरे खण्डित जीवन की लालसा है। चलो भीतर बेटी, यह तुम्हारा ही घर है, सङ्कोच न करो।

जैसे गाय के पीछे-पीछे बच्चा जाता है उसी तरह नीलू सास के पीछे-पीछे चल दी। उसका हृदय एक अभूतपूर्व भावना से भर गया। एक क्षण भर में जैसे उसने एक नैसर्गिक स्नेह के समुद्र में स्नान कर लिया और वह पवित्र हो गई। वह भूल गई अपने माता-पिता, कोठी, विलायत-यात्रा, शिक्षा और उसका सब गर्व। वह उस क्षीणकाय श्वेत-वसना वृद्धा के स्नेह-पूरित हृदय-सरोवर में डूब गई। उसका मन कुछ अजीब-सा हो गया और उसकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे।

थोड़ी देर बाद जब दासी कुछ जलपान लेकर आई तो नीलू ने उससे पूछा—अम्माँ कहाँ हैं?

"भैया ने उन्हें जबरदस्ती लिटा दिया है; वे तो खुद ही जलपान लेकर आप के पास आ रही थीं।"

"मुझे उनके पास अभी ले चलो।"

"आप थोड़ा जलपान कर लीजिए!"

"नहीं, पहिले मैं उनके पास जाऊँगी। नीलू उठ खड़ी हुई, विवश दासी उसे लेकर गृहिणी के कमरे में आई। गृहिणी पलँग पर लेटी हुई थी और महेन्द्र पाटी पर बैठे धीरे-धीरे उनके स्वास्थ्य का समाचार पूछ रहे थे। नीलू ने अचानक आकर उनके दोनों चरणों पर अपना माथा टेक दिया और आँसुओं से उनके पैर भिगो दिये। मेरी बेटी, मेरी रानी, कहती हुई गृहिणी ने उठकर उसे खींचकर छाती से लगा लिया। महेन्द्र उठकर बाहर चले गये। नीलू फिर सास की छाती से लग कर रोने लगी।

कुछ देर बाद उसने अपना पर्स उठाया और उसे धीरे से सास के चरणों में उलट दिया। चमचमाती गिन्नियाँ बिछौने पर बिखर हँसने लगीं। गृहिणी ने मृदुल हास्य से हँस कर कहा—अरी, देखो री, देखो! मेरी लक्ष्मी बहू ने मेरे घर में सोना बखेरा है। दासी हँसती हुई आई, जो-जो मुँह में आया, कहने लगी। नील ने फिर सास की गोद में मुँह छिपा लिया। उसका हृदय विचित्र प्रकार से आन्दोलित हो रहा था। एक प्रबल-शक्ति उसे वृद्धा की ओर खींच रही थी। वृद्धा ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते-फेरते कहा—मैंने भैया को बचपन से पाल-पोस कर इतना बड़ा किया। उसके पिताजी उसे तीन ही वर्ष का छोड़ गये थे। मैं अभागिन नारी-जाति उसीको देख-देख कर दिन काटती रही। उन्हें पढ़ाया, बिलायत भेजा। मेरा बेटा पढ़-लिख कर सूर्य की भाँति चमक उठा, मेरा जन्म सफल हुआ। अब बेटी मेरी यही साध है, जैसे मैंने बेटे की सेवा की, वैसे ही थोड़े दिन लक्ष्मी बेटी की भी सेवा कर लूँ, फिर मेरे जीवन का अन्त हो जाय। उन मृदुल भाव और मृदुल शब्दों का नील पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने हजार मुँह से कहना चाहा कि माँ, मैं तुम्हारी सेवा करूँगी। पर अनभ्यस्त बात उसके मुँह से नहीं निकली। फिर भी उसके मुँह से बालिका के समान शब्द निकल पड़े।

"अब आपका जी कैसा है अम्माँ?"

"बहुत अच्छा है बेटी, आज मैं तुम्हें अपने हाथ से रसोई बनाकर खिलाऊँगी, देखूँ मेरी बेटी को भाती है कि नहीं। अरी बेटी, मैं देहातिन जो ठहरी; पर तुमने शायद जपलान भी नहीं किया। अच्छा—यहीं जलपान करो बेटी, मैं देखूँ तो मेरी आखें ठण्डी होंगी, मेरी आखें सफल होंगी।

नील विरोध तो कर ही न सकती थी; शिष्टाचार भी न दिखा सकी, वह चुपचाप जलपान करने लगी। इस समय गृहिणी की आँखों और मुख से स्नेह-धारा बह रह थी। जलपान के बाद उसने कहा—"अब तुम आराम कर लो बेटी; रास्ते की थकी हो।" उन्होंने महरी को इशारा किया, और नील आज्ञाकारी बालिका की भाँति चली गयी।

———

७

थोड़ी ही देर में गाँव भर में नीलू की अवाई की खबर फैल गई। गाँव-देहात में नई दुलहिन का आना अच्छा खासा कौतूहल का विषय होता है। सबसे पहिले सीताराम की दादी अपनी ७ बरस की नवासी की उँगली पकड़े आई। घर की पौर में कदम रखते ही उसने पञ्चम स्वर में चिल्ला कर मालकिन को पुकार कर कहा—कहाँ है री तेरी बहू, मैंने तो अभी सुना, सोचा देखती चलूँ। यह लड़की ऐसी खराब है कि जिसका नाम नहीं। कहीं बहू को गाड़ी से उतरते देख लिया, लगी शोर मचाने। कहा—दादी, बहू आई है, बहुत बड़ी घूँघट भी नहीं है। मैंने कहा चुप जलमुँही, ऐसा भी कहीं होता है।

बुढ़िया और भी कुछ बड़बड़ाती; पर दासी ने कहा—माँ जी का जी अच्छा नहीं है। दादी जी, चलिए बहू रानी उस कमरे में हैं। बहू रानी लक्ष्मी का औतार हैं दादी, उन्होंने ढेर-सी अशर्फी माँ जी को पैर-पड़ाई दी है। बुढ़िया दादी यह सुनकर जलकर खाक हो गई। उसके बेटे की बहू ने तो उसे एक धेला भी नहीं दिया था। उसने कहा—चल तो देखूँ तेरी लक्ष्मी बहू कैसी है। और वह पोती को घसीटती हुई नीलू के कमरे में घुस गई। नीलू ने भीतर से सारी बातें सुन ली थीं। ज्योंही मैले कपड़े पहने पोपले मुँहवाली वह बुढ़िया नीलू के कमरे में घुसी, नीलू आँख फाड़-फाड़ कर उसके सैकड़ों सिकुड़न पड़े चेहरे को देखने लगी। कहारिन ने 'दादी हैं' कहकर जो परिचय दिया वह उसने सुना ही नहीं। घर में पैर

रखते हुए, बुढ़िया जो बड़बड़ा रही थी उसे ही याद करके जैसे उसका खून गर्म हो गया, और आँखों में घृणा भर गई। वह आँखें फाड़-फाड़ कर बुढ़िया को घूरने लगी। बुढ़िया ने देखा, न उसका पैर छुआ गया न बैठने को कहा गया। उसने सिर से पैर तक घूर कर नीलू को देखा और कहा—अच्छी गोरी चिट्टी बहू है, रमुआ की माँ कहती थी कि बहुत पढ़ी-लिखी बहू है, पढ़ी-लिखी लड़कियों को जरा शरम कम होती है, छोटे बड़ों का लिहाज भी नहीं होता। यों कहकर वृद्धा जरा मुस्कराई। यह टिप्पणी सुन कर नीलू और जल उठी। उसने कहा—इसीलिये शायद आप पढ़ी लिखी नहीं हैं।

राम कहो बहू, हमारे जमाने में क्या लड़कियाँ पढ़ती थीं? नीलू गर्म ही होती जाती थी। उसी धुन में उसने कहा—शरम लिहाज भी इसी से आप में बहुत ज्यादा है।

बुढ़िया को क्रोध आ गया, उसने कहा—"बहू, छोटे मुँह बड़ी बात नहीं कहते, अभी तो आई हो।" बुढ़िया को आगे कुछ कहने से रोक कर महरी उसे गृहणी के पास ले गई। नीलू भी कुछ कहना आवश्यक न समझ कर दूसरी ओर मुँह करके बैठ गई। गृहणी के कमरे में जाकर बूढ़ी ने ऊँचे स्वर में कहा—"बहू तो खूब गोरी चिट्टी है, पर जबान उसकी हाथ भर की है। मेरा तो कुछ कहना नहीं, वर की हूँ। जरा उसे समझा-बुझा दे, कायदे से रहे। नहीं तो बहू बड़ा नाम धरायेगी।

गृहणी ने उसे तसल्ली दी। बुढ़िया को विदा किया। दोपहर होते-होते गाँव भर में नीलू के सब गुण बढ़-चढ़कर प्रगट हो गये। बहू निर्लज्ज है, गवाँर है, मुँहफट है, छोटे घर की है, चाल-चलन भी ठीक नहीं है। पनघट पर, गली में जहाँ चार स्त्रियाँ एकत्र होतीं यही चर्चा रहती। उस दिन दोपहर तक नीलू के कमरे में औरतों

का ताता लगा रहा। नीलू किसी से बोली नहीं, न उसने किसी की ओर आँख उठाकर देखा। उसे ऐसा मालूम होता था, जैसे वह एक तूफान में बही जा रही है।

दोपहर को खा पीकर नीलू कुछ स्वस्थ हुई। वह जरा लेटकर अपने उस नवीन जीवन पर सोचने लगी। पति और सास, यह घर और यह देहात, उसके सोचने का विषय था। एक अन्तर्द्वन्द्व उसके हृदय मे मचा था। वह सोच रही थी, यह जो उससे बिना ही पूछे उसका जीवन एक नये ढाँचे में ढाल दिया गया है, सो क्या अच्छा हुआ है। पहले उसने पति की बात का सोचा। बहुत सोचने पर भी वह उसमें कोई दोष न निकाल सकी। फिर भी वह बोझ, जीवन संगी का बोझ, उसपर बिना ही पूछे क्यों लाद दिया गया? वह बिना ही पूछे क्यों यहाँ अपरिचित स्थान में भेज दी गई? उसका संस्कृत मन इसी का विद्रोह कर रहा था। परन्तु उसकी सारी दृढ़ता और विचार-धारा को विचलित करके जो एक मूर्ति—सास की मूर्ति, उसके सामने आ जाती थी, वहाँ उसकी सब संस्कृत, विचार-धारा, स्वाधीन-लिप्सा और अधिकार-गर्व, जैसे हवा हो जाता है। किसी अतर्क्य शक्ति-बल से वह प्रथम बार ही में आपा खो बैठती थी। सब विचार-धाराओं के ऊपर उसके मस्तिष्क में उस शुभ्ररूपा वृद्धा की विशाल मूर्ति ही दीख पड़ती और वह जैसे उस प्रेम और कोमलता की छाया में स्वयं ही खो जाती।

हठात् एक धीमी और मधुर आवाज उसके कान में पड़ी—भाभी!

नीलू ने चौंककर देखा, एक गौरवर्ण किशोरी मन्द-हास्य से अपने दाँतो की धवल छटा दिखाती हुई कुछ हँसती, कुछ सकुचाती-सी चौखट पकड़े द्वार पर खड़ी थी! उसके मुँह से

'भाभी' शब्द नीलू को इतना मीठा लगा कि उसका हृदय उछलने लगा। यह मधुर सम्बोधन उसे पहली ही बार सुनना नसीब हुआ था। किशोरी ने लजाते हुए कहा—भीतर आऊँ भाभी ?

"आओ न।"

क्षण भर में बालिका नीलू के पैरों में बैठ गई। एक अनिर्वचनीय आत्मीयता से आवेशित हो नीलू ने उसे गोद में खींच लिया। बालिका ने स्वच्छ नेत्रों से नीलू को देखा। वह हँसी और नीलू की गोद में अपना मुंह छिपा लिया। नीलू सोचने लगी, क्या यह सब लोग अपरचित हैं ? फिर ये प्राण इन नये नये प्राणियों के प्रथम-दर्शन ही में क्यों अनुप्राणित हो जाते हैं ! बालिका की हँसती हुई आँखें देखकर नीलू के होठों पर भी हास्य बिखर गया। उसने कहा—क्या नाम है तुम्हारा !

"मणि।"

"बहुत अच्छा, मैं भी मणि ही की जाति की हूँ, मेरा नाम है नीलम, जानती हो ?

बालिका कुछ न समझ कर भी बोली—हाँ, भाभी।

अरे ! यह कितना कोमल, कितना मधुर शब्द है, इसमें कैसा प्रिय अर्थ भरा है ! एक बार नीलू ने दोनों हाथों से बालिका का मुँह ऊपर उठाकर चूम लिया। फिर उसने कहा—अच्छा मणि, आज से हम तुम सहेली हुईं। हुई न ?

बिना ही विचारे मणि ने सिर हिलाकर कहा—हाँ भाभी।

आह, नीलू के हृदय में लहर उठने लगी। वह चाहने लगी, जितनी ही बार यह लड़की 'भाभी' कहे उतना ही अच्छा है। उसने उसे कस कर गोद में खींचते हुए कहा—तुम्हें भाभी पसन्द तो है।

"तुम बहुत अच्छी हो भाभी।"

नीलू ने फिर बालिका का मुँह चूम लिया।

८

रात्रि को यथासमय महेन्द्र ने नीलू के कमरे के द्वार पर आकर मृदु स्वर से पूछा—क्या मैं भीतर आऊँ नील?

नीलू चौंक पड़ी। निस्सन्देह वह दीया जलने के बाद ही से पति के आने की प्रतिक्षा कर रही थी। वह अपने दुर्व्यहार को भू ी न थी। वह चाहती थी कि वे वाक्य पृथ्वी के वातावरण से नष्ट हो जाँय। उसके भीतर द्वन्द मचा हुआ था। ए ाएक पति ने भीतर आने की जो अनुमति माँगी तो नील ने उसे एक व्यंग समझा। वह उठ खड़ी हुई और अनमन भाव से कहा—"आइये" और ज्योंही महेन्द्र ने भीतर कदम रक्खा, उसने कहा—"यह तो आप का घर है। इजाजत की क्या जरूरत थी?"

"कल तक जरूर था नीलू पर आज से तुम्हारा है, इसी से मैंने पूछा था, क्या बुरा लगा?"

"कुछ ज्यादा नहीं, पर आप बुरे-भले का हिसाब किताब कहाँ तक रखियेगा? फिर, मैं आप की एक भूल सुधारना चाहती हूँ। घर मेरा नहीं, आप का है।"

"नहीं नीलू, घर ही नहीं, इस घर में जो कुछ भी है सब तुम्हारा है।"

"आप भी?"

"निस्सन्देह, और अम्माँ भी नीलू, सब तुम्हारे हैं!"

नीलू को जवाब नहीं मिल रहा था। सास को वह बहस में नहीं ला सकती थी। पर पति पर उसे क्रोध था तो क्यों? सो इसका पूरा-पूरा कारण खोजना कठिन था, पर उन्होंने यात्रा में उसे

अलग बैठाया था। उसे सेकण्ड क्लास में बैठा कर आप थर्ड में बैठे थे और तमाम दिन अनेक सम्भावना होने पर भी वे किसी बहाने नीलू के सामने न आये थे। नीलू सोचने लगी, क्या मेरी इन्हें जरूरत ही नहीं, मैं इतनी उपेक्षा की वस्तु कैसे हूँ? उसने धीमे स्वर में कहा—आप शायद भूल कर रहे हैं। परिस्थिति तो ऐसी है कि ये शब्द मुझे कहने न चाहिये। हिन्दू लड़कियों का यही तो भाग्य है।

"तुम क्या चाहती हो नीलू?"

नीलू ने बात काट कर कहा—सिर्फ यही कि हिन्दू समाज में स्त्रियाँ पति की सम्पत्ति होती हैं। उनका पिता उन्हें जिन हाथों में स्वेच्छा से अर्पण करता है, उसी की वह हो जाती है। उन्हें अपने अपने शरीर और आत्मा पर कुछ भी अधिकार नहीं रह जाता। उन्हें जान लेना चाहिये कि उनका अस्तित्व एक कल्पना मात्र है।"

"नीलू! इन सब विवादास्पद बातों पर बहस का यह समय नहीं। मैं तुम्हें यह कहना चाहता हूँ कि मैंने अपना आत्मार्पण तुम्हें किया है और हमारे तन, मन, धन की तुम स्वामिनी हो, इसीलिये इस घर की और उसके मालिकों की—सबकी तुम्हीं स्वामिनी हो।'

नीलू लाजवाब होकर भी चूकी नहीं, उसने कहा—इस उदारता के लिये आप को मैं धन्यवाद दूँ?

"नहीं नीलू, तुम जरा बैठ जाओ और मुझे यह बताओ कि तुम्हें यहाँ क्या-क्या असुविधायें हैं; क्योंकि मैं तो कल ही प्रातः-काल दिल्ली चला जाऊँगा। अधिक छुट्टी नहीं है। यहाँ तुम अप-रिचित और नई हो, अम्माँ रुग्ण हैं, तुम्हें मेरा एक अनुरोध मानना होगा। तुम्हें स्वयं ही अपनी सब व्यवस्था करनी होगी।

तुम समझदार हो, धनिया तुम्हारी सेवा में है।"—इतना कहकर वे एक कुर्सी पर बैठ गये।

नीलू को मालूम हुआ जैसे भूकम्प आ रहा हो। महेन्द्र सुबह कहीं बाहर जा रहे हैं, यह न जाने क्यों वह सुन न सका, वह बोली भी नहीं, बैठी भी नहीं। सिर्फ खड़ी रही। उसके होंठ काँप रहे थे। महेन्द्र ने फिर कहा—तुम्हें एक और भी कष्ट करना होगा।

"कम से कम प्रति सप्ताह मुझे एक पत्र लिखना होगा; उसमें अपने और अम्माँ के स्वास्थ्य की सूचना देनी होगी और जो कुछ भी आवश्यक बात होगी लिखनी होगी।"

नीलू ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी, पर बोली नहीं। कुछ देर चुप रहने के बाद महेन्द्र ने फिर कहा—नीलू, यहाँ गाँव-देहात में तुम्हें कुछ अच्छा तो न लगेगा, परन्तु लाचारी है। अपना समझ कर घर की त्रुटियों को क्षमा करना और जो तकलीफ हो, अम्माँ से बेखटके कहना।"

नीलू अब भी नहीं बोली। इसपर महेन्द्र ने धीरे से कुर्सी से उठते हुए कहा—अच्छा अब तुम आराम करो, मैं जाता हूँ। सुबह शायद मुलाकात न हो सके। मुझे बहुत जल्दी ही चला जाना होगा।

महेन्द्र जाने लगे। नीलू को लगा जैसे उसके प्राण निकल रहे हैं। पर वह पति से कैसे कहे कि ठहरो। फिर भी उसने धीमे स्वर में कहा—"आप शायद बहुत ही व्यस्त हैं।"—नीलू का स्वर काँपा।

"नहीं।"—महेन्द्र ने लौट कर कहा। नीलू चुपचाप खड़ी रही। महेन्द्र कुछ न कह कर फिर बैठ गये। क्षण भर बाद उन्होंने कहा—"बैठो नीलू।"

नीलू कुर्सी पर बैठ गई, दोनों ही व्यक्ति बातें करने का विषय खोजने लगे। पर दोनों के मुंह से बात नहीं फूटी। महेन्द्र ही ने

कहा—आज दिन भर तुम्हें बहुत असुविधा रही होगी ? गाँव भर की स्त्रियाँ तुम्हें देखने आईं, धनिया कहती थी।

"जी हाँ, आप के इस गाँव में शायद नई बहू कभी नहीं आई ?"

"कम से कम तुम सी तो कभी नहीं नीलू।"

"वे लोग शायद मुझे चिड़ियाघर का कोई अजीब जानवर समझ रही थीं।"

"क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया था नीलू ?"

"मैं नहीं जनती आप उसे क्या कहेंगे। मान या अपमान, पर सब ने मुझे घूर-घूर कर देखा। चोटी से एड़ी तक और फिर आँख नाक कान सब की अलोचना की, जैसे गाय खरीदने के वक्त की जाती है।"

"उन्हें माफ कर देना नीलू, वे सब बहुत गरीब, सीधी- सादी देहाती औरते हैं।"

"और वह बुढ़िया तो मुझे बेशर्म बना रही थी ?"

"ओह ! दादी को कहती हो, जब तुम उससे परच जाओगी तो तुम उससे बहुत खुश होगी।"

"कितनी गन्दी घिनौनी है वह, आपने यहाँ अम्मा जी को रख छोड़ा है ?"

"अम्माँ जी इसका जवाब दे सकेंगी नीलू, उनकी आयु के ४० साल इसी गाँव में कटे हैं !"

सब ओर से हटकर नीलू का ध्यान सास पर जा अटका, वह क्या सास से भी कभी बहस कर सकती है। उसने कहा—"आप उन्हें अपने साथ क्यों नहीं रखते ?"

"तुम उन्हें राजी करके मुझे लिखना और तब मैं तुम लोगों को ले जाऊगा।"

नीलू को मालूम हुआ जैसे वह पति से पराजित सी हो रही है। वह देवता जैसे पति से बहस करना चाहती थी, पर जैसे वह दबी जाती थी और उसे विवाद का कोई विषय न सूझता था, फिर भी उसने एक बात निकाल ही ली—आप शायद इस बार भी थर्ड क्लास ही में सफ़र करेंगे ?

"हाँ, नीलू मुझे इसमें अच्छा लगता है।"

आपको इसमें अच्छा लगने के कारण भी तो हैं—धक्के खाने पड़ते हैं, गन्दे लोगों को छूना होता है, और रात ऊँघ कर बितानी होती है। सबसे अधिक टिकट-कलक्टरों की डाँट खानी होती है। तब अच्छा न लगे तो क्या हो ?"—कुछ रुक कर नीलू द्वार की ओर देखने लगी, फिर उसने अपनी स्पीच के सिलसिले को जारी रखते हुए कहा—"तिसपर आपका यह कुर्त्ता, धोती और ठेठ हिन्दुस्तानी जूता। सब फब जाता है।"

महेन्द्र झेंपे नहीं, पर थोड़ा घबड़ाये जरूर! वे बोले—नीलू, इन सब बातों से बचाव होना मुश्किल है, हमें देश के साथ रहना चाहिए। उसी तरह जैसे सब रहते हैं।

"पर आप यूरोप के तीन विख्यात युनिवर्सिटियों के प्रतिष्ठित डाक्टर हैं न ?"

"इससे क्या हुआ नीलू ?"

"इससे कुछ नहीं हुआ ? विश्व-विख्यात डाक्टरेट की उपाधियाँ आप अपनी कुर्ते की जेबों में डाले, धुनियाँ-जुलाहों के साथ बैठ कर सफर करते हैं, टिकट चेकरों से फटकार खाते हैं। यह सब कुछ है ही नहीं ? आप वेतन क्या पाते हैं, कहिए तो ?"

"अठारह सौ रुपये नीलू! पर उसमें से तुम्हें बहुत कम दे सकूँगा, शायद तुम्हें मालूम नहीं.......।"

बीच ही में बात काट कर दर्प के साथ नीलू ने कहा—मुझे

आप के रुपये बिलकुल नहीं चाहिए, मैं सिर्फ एक बात चाहती हूँ।

"कहो नीलू, मैं वही करूंगा जो तुम चाहती हो।"

"आइन्दा आप मेरे साथ थर्डक्लास में सफर न कर सकेंगे। आपको मेरी और मेरे पिताजी की प्रतिष्ठा का ख्याल रखना होगा।"

महेन्द्र के हृदय से बोझ उतरा। उन्होंने एक लम्बी साँस खींच कर कहा—"ओफ, यह बहुत आसान है, आइन्दा ऐसा ही होगा।"—और वे बिना ही नीलू की ओर देखे तथा जवाब की प्रतीक्षा किये कुर्सी से उठ खड़े हुए। नीलू का अन्तिम शब्द किसान के दराँत की भाँति उनके हृदय को चीरता हुआ चला गया था। नीलू ने भी अपनी गर्वोक्ति के अनौचित्य को समझ लिया। पर जो बात मुँह से निकलनी थी, निकल गई। नीलू अब पति को रोक न सकी। वे चले गये। नीलू ने समझा जैसे सब अँधेरा हो गया। आसमान के तारे टूट पड़े। चन्द्रलोक बुझ कर राख हो गया और जैसे उसके शरीर का रक्त जम गया। वह कुर्सी पर बैठी रह गई। एक बार उसने अपने उस नवपरिचित शयनागार पर दृष्टि डाली जिसमें शहरी सजावट तो न थी, पर सुहागरात का शयनागार था। पलँग पर नई साफ धुली चादर थी। उत्तम काम के कढ़े हुए नये तकिये थे। छपरखट पर फूलों का शृंगार था। सिरहाने एक थाल में कुछ मेवा, सुगन्ध और मिष्टान्न रखा था। नीलू न बालिका थी, न मुग्धा। पति, सुहागरात और विवाह इन सब को वह ठीक अर्थों में समझती थी। प्यार की मन्दाकिनी-धारा का उद्गम उसके हृदय में उमड़ रहा था। यह उसकी आयु थी, शिक्षा थी और विश्व-दर्शन था। जिसने उसे अपने जीवन-सङ्गी के सम्बन्ध में आवश्यकताएँ बता दी थीं। उसे जीवन-सङ्गी मिला था। उसे देखने से प्रथम ही, वह

अकारण ही उससे विद्रोही हो गई थी। जीवन-नौका धारमें चल खड़ी हुई थी। और उसी विद्रोह-भाजन के हाथ में उसका डाँड़ था। वह जा रही थी और झगड़ रही थी। क्यों? सो वह कह न सकती थी। उसके सामने आत्म-सम्मान का एक आवरण था। वही उस जीवन-सङ्गी से न मिलने देता था। आज पति अपमानित होकर नीचे गर्दन किये सुहागरात की इस तारोंभरी रात में शयनागार से बाहर जाते देखकर, नीलू के लिये वह चिरप्रिय आत्म-सम्मान पहाड़-सा हो उठा। उसे ऐसा मालूम हुआ कि जैसे वह उसके बोझ से कुचलकर मर जायगा। जैसे बालक अपना सुन्दर खिलौना टूट जाने पर बिलख कर रो उठता है, वैसे ही वह रो उठी। उसके मन ने कहा, वे क्या एक बात मीठी नहीं कह सकते? मना नहीं सकते, उन्हें क्या इस कमरे में रहने, यहाँ सोने का अधिकार नहीं है? अपने अधिकार को जो यों त्याग दे वह भी कोई आदमी है।

नीलू के मनमें क्रोध आने लगा था, पर वह बढ़ा नहीं। बहुत विचारने पर भी उसे ऐसा कोई बात नहीं मिली कि जिससे उनका क्रोध या अविचार प्रकट हो। उलटे उसने देखा, वे तिरस्कार और अपमान सह सकने में भी अनुपम हैं। परन्तु एक बार वे जबरदस्ती यह कहकर, नीलू तुम मेरी हो, मुझे हृदय से लगा लेते तो क्या मैं इन्कार करती! यह न कर वह चले गये। उनका आत्म-सम्मान ऐसा है? अच्छी बात है, है तो रहे। मैं भी नील हूँ। एक बार उसने फिर मान करने की चेष्टा की, पर बहुत दूर तक आत्मा को टटोलने पर भी उसने देखा, मान कहीं है ही नहीं, सब विगलित होकर बह गया है। वह कुछ देर एकटक सुहाग-शैय्या पर रखे उज्ज्वल दोनों तकिया को देखती रही। उसे माता के वे सब दुलार याद आये जब वह उसे बात-बात पर मनाती थीं। हाय उसी

तरह ये क्यों नहीं मना लेते हैं ? बड़े-बड़े आंसुओं की बूँदें इस बार उसके अन्तस्तल से निकल कर टपकने लगीं। वह फिर एक लम्बी साँस खींच, बत्ती बुझा, चटाई पर अपनी बाँह का तकिया लगा सो गई। सो गई सो बात नहीं, पड़ गई।

———

९

घर के सब सब आवश्यक कामों से निबट कर धनिया जरा-सा तेल ले, मालकिन के तलुओं पर लगाने बैठी। यह उसका नित्य का अन्तिम कार्य था। गृहिणी ने मधुर स्वर में कहा—आज रहने दे धनिया, बहुत काम किया है। जा सो रह बेटी।

धनिया दस बरस से नौकर है। वह विधवा है, नीच जाति की होकर भी वैधव्य की दुपहरी उसने इस शुभ्रदर्शना गृहिणी के साथ व्यतीत की है। अब वह तीस वर्ष की है। उसने कहा—जरा तेल लगा दूँ अम्माँ, तुमने तो आज बहुत काम किया, हरारत तो नहीं है?

'नहीं बेटी, वह मुस्करा उठी।"—फिर कहा—'भैया, सो गये न?"

"कहाँ! वे बैठक में कुछ लिख पढ़ रहे हैं?"

"सुबह उन्हें बहुत जल्द जाना होगा, उनसे कहो जाकर, बहू अकेली बैठी होगी।"

"कहा था अम्माँ"—धनिया ने लजाते हुए धीमे स्वर से कहा।

"गये नहीं फिर?".

"न"—कुछ देर धनिया रुकी। फिर बोली—"रामधन से कह कर उन्होंने वहीं बैठक में बिछौना लगवा लिया है।"

गृहिणी का जैसे किसी ने दंश किया। उन्होंने विस्मित स्वर में कहा—बैठक मे बिस्तर लगवा लिया है? क्यों! मैंने तुझे जो-जो कहा था, वह सब तूने किया न?

"जी हाँ. सब ठीक ठाक करके, बहूरानी का सिंगार करके सब बातें उन्हें समझाकर, मैं भैया से कहने गई थी कि वे ऊपर जाकर आराम करें।"

"गये नहीं फिर वे ?"

"गये तो थे; पर थोड़ी ही देर में वापस आ गये, और आते ही बैठक में सोने की व्यवस्था कर ली।"

"बहू ने तुझसे कुछ कहा था क्या ?"

"जी, कुछ नहीं।"

"तूने फिर ऊपर जाकर देखा था ?"

"जी हाँ मैं दबे पैर गई थी, देखा कमरे में अँधेरा है, बहू रानी शायद सो गई थीं।"

गृहिणी एक विकल श्वास लेकर उठ बैठीं। उन्होंने कहा—भैया को जल्द यहाँ बुला ला, सो गये हों तो भी बुला लाना।

धनिया बिना कुछ कहे महेन्द्र को बुलाने चली गयी। महेन्द्र का मन बहुत खराब हो रहा था। वे नीलू की मूर्ति का ध्यान कर रहे थे, जिसे उन्होंने गत ४ वर्षों से अपने मन-मन्दिर में बैठाई हुई थी और जिसकी तुलना में संसार की सारी स्त्रियाँ हेय थीं। वे नीलू को एक भावुकता-पूर्ण कोमल कल्पना-मूर्ति बना चुके थे। उनका खयाल था कि स्त्रियाँ प्रेम, कोमलता और दया का अवतार हैं। अक्सर सोचा करते थे, कोमल और बहुत शुद्ध वस्तु को कितनी सावधानी से छुआ जा सकता है। वे निलू के मुक़ाबिले में युद्ध तो कर ही न सकते थे पर नीलू युद्ध करके भी हारे, जीते दुखी रहे यह भी वे सहन न कर सकते थे, नीलू ने उनका भारी तिरस्कार किया था। उस दिन भी और आज भी। उस दिन

उसने उन्हें अपरिचित कहा था और आज अपने से और अपने पिता से हीन कह दिया। पत्नी का यह परायापन वे सह न सके। उनका सारा मनोराज्य जैसे लुट गया! वे जैसे अतल अथाह समुद्र में एकाएक सुखद जहाज से गिर कर डूब रहे हों, फिर भी उन्होंने नील की मूर्ति हृदय में जहाँ थी वहाँ से खसकने नहीं दी। वे अपने कमरे में जा, दोनों हाथों से हृदय को दबाकर बैठ गये और मनोवेदना से पीड़ित होकर अस्फुट स्वर से आप ही आप कहने लगे—वहीं विराजमान रहो निलू, वहीं तुम्हारा स्थान है। चाहे जो भी हो तुम, मेरे जीते-जी वहाँ से च्युत न होने पाओगी।

इसी समय धनिया ने सहमते-सहमते धीरे से कहा—भैया! अम्माँ जरा आप को बुला रही हैं।

महेन्द्र चौंके, उन्होंने कहा—वे क्या अभी सोई नहीं? तुमने उनसे कह दिया होगा कि मैं यहाँ हूँ?

धनिया चुप रही। फिर उसने कहा—कसूर हुआ भैया, उन्होंने पूछा था।

"कुछ हर्ज नहीं धनिया, मैं चलता हूँ।" वे माता के कमरे में धीरे से जा खड़े हुए। माता को बैठी देख वे बोले—"अभी सोई नहीं अम्माँ, तबियत ठीक तो है?"

"बहुत ठीक है बेटे, तुम जरा यहाँ बैठो। धनिया तू देख तो, बहू क्या सो गई? जागती हों तो कह दे कि अम्माँ ऊपर आ रही हैं।"

धनिया चली गई। महेन्द्र ने हिचकते हुए कहा—अम्माँ, नीलू की तबियत ठीक नहीं है, वह सो रही है, उसे इस वक्त...।

महेन्द्र पूरी बात न कर सके। वृद्धा ने उन्हें बालक की भाँति छाती के पास खींच लिया और उनके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली—बहू से क्या नाराज हो बेटे ?

"नहीं तो अम्माँ।"

"तो फिर!"

तो फिर से आगे गृहिणी ने कुछ कहा नहीं। पर महेन्द्र को जवाब नहीं मिला। फिर भी उन्होंने कहा—अम्माँ, तुमने नाहक तकलीफ की, उसकी तबियत........।

गृहिणी ने उन्हें रोक कर स्निग्ध आर्द्र-स्वर में कहा—बेटे, वह पराई बेटी है, अपना घर-द्वार, माता-पिता सबको छोड़ यहाँ आई है। हम सब गैर ही गैर हैं। अभी बालक ही तो है। तुम्हें उसके सब अपराध क्षमा करने होंगे। उसपर गुस्सा नहीं करना होगा।

महेन्द्र ने अधीर होकर कहा—मैं गुस्सा नहीं हूँ अम्माँ, आज उसका जी अच्छा नहीं है।

"हुआ बेटे, चलो देखूँ तो रानी बेटी का जी कैसा है।"—और गृहिणी सचमुच ऊपर जाने को तैयार हो गई। इसी समय धीरे-धीरे नीलू आकर सास के चरणों के पास सिर झुका कर खड़ी हो गई।

गृहिणी ने जरा नाराज होकर कहा—यह क्या किया धनिया, बहू को यहाँ क्यों ले आई ?

धनिया ने अपराधिनी की भाँति कहा—मैंने बहुत मना किया अम्माँ, पर बहू रानी ने न माना। वे आप ही चली आईं।

नीलू ने इसी बीच शान्त-संयत स्वर में कहा—अम्माँ जी, क्या आज्ञा है? नीलू का यह मधुर मृदुल वाक्य माता और

पुत्र दोनों ने पुलकित होकर सुना। गृहिणी ने धनिया से कहा—"जा तो बेटी, रानी बिटिया का कमरा सब ठीक-ठाक कर दे।" फिर बहू को भी खींच कर छाती के पास ले आकर उसने कहा—यह मेरा बेटा है रानी बेटी, और तुम मेरी राजलक्ष्मी हो। इस घर में तुम आनन्द, प्रकाश, सौभाग्य और जीवन बखेरने आई हो। आज तक तुम अपने माता-पिता के यहाँ रहीं, पलीं बड़ी हुईं और महेन्द्र भी। भाग्य और जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों ने फिर एकत्र किया है? जब कि तुम नया शरीर, नया जीवन और नया संसार पा चुकी हो। इससे पहिले भी तुम अनन्त काल तक एकत्र रही हो। महाकाल ने तुम्हारा विच्छेद किया था। एक दिन वह फिर विच्छेद करेगा। यह नियति है। बेटी, तुम दोनों बहुत बुद्धिमान्, विद्वान आत्माओं के स्वामी हो। नियति ने तुम्हें फिर मिलाया है। यह तुम्हारा दुर्लभ मिलन है बेटी, साधारण नहीं। तुम जानती हो, महेन्द्र के पिता को गये आज २२ वर्ष हो गये। वे तो बीत ही गये—अब और कितने वर्ष यह शरीर भोग लेगा? इसके बाद इस जीवन का अन्त होगा। नवीन जन्म होगा। उसका विकास होगा। बेटी, तेरे ही समान फिर मेरा रूप होगा। आज जैसे सब कुछ तुम्हारे लिए नवीन है, उसी भाँति मेरे लिए भी होगा। उस काल में बहुत दिन हैं। पर मैं धैर्य से उसकी प्रतीक्षा करूंगी। तुमने न जाने कितनी प्रतीक्षा की होगी? उसके बाद आज का दिन आया है। आज तुम मिली हो। तुम पत्नी हो, यह पति है। अब तुम न अपनी माँ की बेटी हो न पढ़ी-लिखी नीलू रानी हो। न मेरा बेटा, मेरा बेटा है। न वह प्रोफ़ेसर या विलायत पास है। यह सब बाहरी बातें हैं। भीतरी बात यही है कि वह पति और तुम पत्नी हो, आज से तुम परस्पर अति परिचित,

अति निकट, अति एकान्त हुए। ईश्वर तुम्हारा जीते जी विच्छेद न करे। तुम दोनों एक हो जाओ। जैसे दो बर्तनों का पानी एक हो जाता है। उसी तरह एक-दूसरे को आत्मार्पण करो, एक-दूसरे में खो जाओ। तुम्हें सब कुछ मिलेगा। जाओ बच्चो! आराम करो।

नीलू और महेन्द्र दोनों चुप थे। दोनों की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। उस शान्त रात्रि के अन्धकार में न जाने कौन देवदूत वृद्धा के मुख में बोल रहा था। उसने दोनों ही की पीड़ा का हरण किया था। वृद्धा ने कुछ ठहर कर कहा—धनिया बेटी, मेरे बच्चों को ऊपर पहुँचा दे। बेटे-बहू ने माता के चरणों मे प्रणाम किया और चुपचाप चल दिये। वृद्धा पलँग पर पड़ कर आनन्द के आँसू बहाने लगी।

१०

ऊपर जाकर महेन्द्र ने देखा नीलू की आँखें लाल हो रही हैं और पलकें सूज रही हैं। उन्होंने बहुत दुःखित होकर कहा—तुम्हें बहुत दुःख हुआ है नीलू!

"काहे का दुःख?"—नीलू ने अन्यत्र देखते हुए कहा।

महेन्द्र द्विविधा में पड़ गये। जो कहना चाहते थे, न कह सके। शायद उसके दिल को चोट लगे। फिर भी उन्होंने धीमे स्वर में कहा—एक बात कहूँ?

"कहिए।"

"जो बात हो गई, वह तो लौटाई नहीं जा सकती नीलू, परन्तु..."

"परन्तु क्या?"

हठात् जैसे बिजली का स्पर्श हो गया हो, उसी भाँति महेन्द्र के मनमें एक बिल्कुल नई बात, नया विचार उत्पन्न हुआ। उन्होंने बहुत ही भयभीत सा होकर नीलू की ओर देखा। नीलू ने उनके मनोभाव को देख कर कहा—परन्तु क्या? कहिए!

"एक बात मैं तुमसे पूछूँ?—महेन्द्र की जबान लड़खड़ा गई और उनका चेहरा एकाएक सफेद हो गया। नीलू ने देखा तो वह सहम गई। उसने एक कदम आगे बढ़कर कहा—"आपका जी कैसा है, बैठ जाइए। नीलू ने उनका हाथ पकड़ कर पलंग पर बैठने का संकेत किया, पर महेन्द्र कुर्सी पर दोनों हाथों पर सिर रख बैठ गये।

"क्या मैं धनिया को बुलाऊँ? आपका जी…"

"नहीं-नहीं, मैं बहुत अच्छा हूँ।—नीलू ने देखा, उनके होंठ सूख गये हैं। और उनकी आँखें चञ्चल हैं और करुण-दृष्टि इधर-उधर कमरे में बखेर रही हैं; परन्तु उस दृष्टि के असल लक्ष्य नीलू को बचा जाती हैं।

नीलू बहुत डर गई। उसने कहा—क्या जल लाऊँ?

"दे दो नीलू!"

पानी का एक घूँट पीने से महेन्द्र ने स्वस्थ होकर नीलू की ओर देखा। और कहा—नीलू, तुम्हारे इतने दुःख का कारण क्या है?

"मुझे कोई दुःख नहीं है।"—नीलू ने भरी आवाज में कहा।

"मुझसे कहो नीलू, कृपा कर कहो, मैं प्राण देकर भी उसे दूर करूँगा, प्राण देकर भी।"

नीलू का हृदय रोने लगा। उसने कहा—आपको भ्रम हुआ है, मुझे कोई दुःख नहीं है।

"तब?"

"तब क्या?"

"हाँ, खैर तो मुझे एक बात बताओगी?"—महेन्द्र की आँखों में फिर वही सफेदी छा गई।

"आप पूछिए न!'

"सच कहोगी नीलू?"

नीलू इस बार सह न सकी, उसने आँखों में आँसू भर कर कहा—आप मेरा अपमान कर रहे हैं!

"ओह!"—महेन्द्र मर्माहत से हो बैठ रहे।

नीलू ने देखा वे रो रहे हैं। वह पास आ खड़ी हुई। बोली—क्या मैंने बहुत कड़ी बात कह दी? पर मैं कभी झूठ नहीं बोलती।

"नीलू मुझे क्षमा कर दो।"—महेन्द्र कुर्सी से खसक कर नीलू के पैर छूने को झुके। नीलू! जब तुमने मुझे क्षमा कर दिया तब अब मत कहो।"

"आपने सुना, अम्माँ जी ने क्या कहा था ?"

"क्या कहा था—हम दोनों एक हैं"—नीलू ने अन्यत्र देखते हुए धीरे से कहा।

महेन्द्र उत्सुकता से कुर्सी से उठ खड़े हुए, उन्होंने कहा—यह सच है क्या ?

"अगर सच है तो मन की बात साफ-साफ कह डालिए।"

"नीलू, मैंने तुम्हारा अपमान किया है, मेरे मन में मलिन भावना आई है। मैं भी कैसा पतित हूँ।"

"फजूल आत्मप्रतारणा करने से क्या लाभ है ? जब हम दोनों एक हैं, तब कौन किसका अपमान करता है ?" नीलू ने डरते-डरते कहा।

"सचमुच क्या हम दोनों एक हैं ?"

"अम्माँ ने कहा था, क्या वे झूठ कहती हैं ?"

"परन्तु नीलू········।"—महेन्द्र फिर चुप हो गये।

"आप जो बात पूछना चाहते हैं, वह आपको पूछना होगा।"

महेन्द्र अपराधी की भाँति देखने लगे। नीलू ने फिर कहा—पूछिए, वह बात पूछिए !

"नीलू, तुमने मुझे क्षमा कर दिया था।"

"पर वह बात आप पूछिए ? आपको पूछना होगा, आपको अपना मन साफ रखना होगा।"

"नीलू ?"

"पूछिए !"

कुछ देर चुप रह कर महेन्द्र ने कहा—अच्छा बताओ फिर क्या तुम किसी और को प्यार करती हो?

नीलू के हृदय में जैसे किसी ने गोली मार दी। पर उसने अत्यन्त शान्त संयत स्वर में कहा—नहीं।

"किसी को भी नहीं?"

"बाबू जी और अम्माँ को प्राणों से अधिक चाहती हूँ।

"और किसी को?"

नीलू क्षण भर रुक कर बोली—अम्माँ जी को भी।

महेन्द्र गद्‌गद् हो गये। उन्होंने कम्पित कण्ठ से पूछा—और किसी को नहीं?

नीलू ने सूखे कण्ठ से कहा—नहीं।

महेन्द्र का हृदय धड़कने लगा। एक अनिर्वचनीय आनन्द से वे ओत-प्रोत हो गये। उन्होंने कहा—तब, नीलू तुम मुझे अपरिचित क्यों समझती हो?

नीलू चुप रही। महेन्द्र ने उत्साहित होकर कहा—अम्माँ ने क्या कहा था, जानती हो? उन्होंने कहा था—हम दोनों एक हैं, फिर अब मन की बात क्यों छिपाती हो? कहो—क्या मुझमें कोई दोष है?"

"मुझे पता नहीं।"

"तुम मुझसे दूर कैसे रह सकती हो, नीलू?"

"शायद नहीं रह सकती!"

"मैं कब तक अपरिचित रहूँगा?

"मैं कैसे कहूँ; परन्तु आप विद्वान् हैं, विवेकी हैं और मैं समझती हूँ विश्वास के योग्य भी हैं। आप क्या यही न्याय समझते हैं कि स्त्रियों को बिना उनकी मर्जी के, बिना उनकी रुचि जाने, माता-

पिता जिनके साथ चाहें उन्हें बाँध दें, खास कर जब स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी हों ? कहिए, कहिए, आप क्या कहते हैं ?

इतनी देर में महेन्द्र के होठों पर मुस्कराहट आई। उन्होंने कहा—समझा, तुम्हारे विद्रोह का कारण यह है। परन्तु नीलू, अम्माँ ने क्या कहा था ? दो आत्मा और दो शरीर, जो अनन्त से आकर एक होते हैं, सो क्या सिर्फ माता-पिता या किसी मनुष्य की इच्छा से ?

"तब किसकी इच्छा से ?"

"नियति, प्रारब्ध और जन्म-जन्मातरों के भोग से। उन्हें मनुष्य टाल नहीं सकता।"

नीलू कहना चाहती थी कि मैं इन दकियानूसी बातों पर विश्वास नहीं करती; पर तुरन्त ही उसे वृद्धा की गम्भीर वाणी का स्मरण हो आया। वह नीची गर्दन करके चुप खड़ी रही।

महेन्द्र ने कहा—एक बात कहूँ नीलू ?

"कहिये।"

"मुझे विश्वास है कि हम जन्म जन्मान्तरों से सम्बन्धित हैं।"

नीलू ने अन्यत्र देखते हुए कहा—हृदय अपने और पराये को पहचान लेता है। जब मुझे इतना ज्ञान हो गया कि मैं अपने जीवन-सङ्गी को अपनाऊँ तो कम से कम मुझे उसको पसन्द करने, समझने, उनके गुण-दोष देखने का अधिकार तो है! एक छोटी सी चीज बाजार से खरीदी जाती है, उसे भी अच्छी तरह परखा जाता है। फिर यह तो जीवन भर का मामला है।

महेन्द्र कुछ कहना चाहते थे। विवाद का अच्छा, खासा वातावरण बन गया था। पर उन्होंने कुछ देर नीलू की ओर ताक कर कहा—अच्छी बात है नीलू, इसके लिये तुम्हें खूब अवसर दिया जायगा। और उसमें तुम्हें किसी किस्म की लाञ्छना का भय नहीं

रहेगा। परन्तु मेरी तुमसे एक प्रार्थना है कि यदि मेरे अन्दर तुम कोई दोष देखो तो मुझे बताना, मैं उसे दूर करने की चेष्टा करूँगा।"

महेन्द्र यह कह कर चुप हो गये। नीलू भी चुप रही। उसके पति की इस बात में न खुशामद थी न असत्यता, और न व्यंग का आभास। वह क्या जवाब दे, यह वह निर्णय न कर सकी। उसे पति की ओर देखने का भी साहस न हुआ।

महेन्द्र ही बोले। उन्होंने स्नेहपूरित स्वर में कहा—"अब सोना चाहिये नीलू।" मगर..........महेन्द्र ने हिचकिचाते हुए कहा—"अम्मा की आज्ञा है, वह तो माननी ही होगी। तुम्हें शायद असुविधा न होगी। मैं उधर खिड़की के पास सो जाऊँगा, तुम पलँग पर आराम करो।

नीलू के होंठ सूख गये। उसने थूक निगल कर कम्पित स्वर में कहा—नहीं, मैं उस चटाई पर सो रहूँगी, आप पलङ्ग पर सोइये।

"यह हो नहीं सकता।"—पलङ्ग से एक तकिया खींचते हुए महेन्द्र ने कहा। और इसी बीच नीलू ने झपट कर उनके हाथ के तकिये के दूसरे छोर को अपनी ओर खींचते हुए कहा—"आप पलङ्ग पर सोइये।"

"नीलू तुम भी तो इंगलैण्ड हो आई हो। मैं देहाती जरूर हूँ, पर लेडीज का सम्मान करना जानता हूँ। तुम जमीन पर सोओ और मैं पलङ्ग पर सोऊँ?"—महेन्द्र ने थोड़े आवेग से कहा।

"क्या हर्ज है, यह आपका हिन्दू आदर्श है। आप तो हिन्दू आदर्शों के बहुत कायल हैं"—नीलू के होठों पर मुस्कराहट आई और आँखों में मधुरस आया। महेन्द्र उसे देखते ही निहाल हो गये। यही वह सन्धिस्थल था, जब वे उसे खींच कर हृदय से लगा

लेते, एक सम्पूर्ण परिरम्भण देते, एक अतर्क्य, अति ऊष्ण चुम्बन अङ्कित करते और कहते, आओ नीलू फजूल का झगड़ा मत करो। प्रकृति और पुरुष की भाँति हम एक हो गये हैं। और तब नीलू क्या, जगत की कौन स्त्री पुरुष के इस आक्रमण से आक्रान्त होकर नारी जन्म न सफल करती! पर महेन्द्र की मानवता ने जैसे उसे जड़ कर लिया। मानवता ही कृत्रिम सीमा-बन्धन है। वे क्षण भर नीलू की इस मुग्धकारी हास्य-रेखा को देखते रहे और फिर हँस दिये। उन्होंने कहा—"हिन्दू-आदर्श यह नहीं है कि स्त्रियों को दासी समझा जाय। किन्तु आदर्शों में स्त्री मानवी नहीं, देवी है, पुरुष को उसकी पूजा करनी चाहिए।' उन्होंने धीरे से तकिया उसकी उँगलियों में से खींच लिया। निस्सङ्कोच भाव से बत्ती बुझाई और चुपचाप खिड़की के पास पड़े एक कार्पेट पर तकिया रख सो गये।

नीलू को मालूम हुआ जैसे वह सब कुछ पाकर भी लुट गई। उसने दोनों हाथों से दिल मसोस लिया। उज्ज्वल आलोक बखेरती हुई पुष्पमाल-सज्जित उस सौभाग्य-शैय्या की ओर एक बार दर्दभरी दृष्टि डालकर वह चुपचाप चटाई पर पड़ रही।

सुहाग-रात की उस कोमल शैय्या के सिर्फ दोनों तकिये ही उस रात उपयोग में आ सके। उन तकियों पर ही छटपटाते प्यासे दो हृदय धड़क रहे थे, जिनकी बाधा सिर्फ उनकी भावना थी।

११

महेन्द्र के चले जाने पर जब मलिन मुख और सूखे होठ लिये नीलू चुपचाप सास के कमरे में जा खड़ी हुई तब उसका मुँह देख कर ही सास ने समझ लिया कि वहू की सुहागरात रसहीन रही। उसके हृदय में चोट लगी। क्षण भर उसने बहू को प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। फिर उसे खींच कर अपनी गोद में बैठा लिया। धीरे-धीरे वृद्धा ने नीलू को लाड़ करते-करते घर-गिरस्ती की बातें शुरू कर दीं। नीलू अपनी सभी ज्ञान-गरिमा और दर्प इस वृद्धा के स्नेहाञ्चल में आकर भूल गई। पति के साथ एक ही घर मे रात भर सोने और सौभाग्य-सुख से वञ्चित रहने का दुःख जैसे उसके शरीर को जला रहा था—एक न समझ सकने वाली वेदना से वह ओत-प्रोत हो रही थी, अब इस स्नेहशीला वृद्धा की गोद में सुख-स्पर्श पा नीलू को बड़ा सुख मिला। वह चुपचाप उसकी गोद में पड़ी, धीरे-धीरे सास की बातों का उत्तर देने लगी। गृहिणी ने पहिले नीलू के माता-पिता का, बिलायत का, सब हाल पूछा। पूछने का ढङ्ग ममत्व और आत्मीयता से परिपूर्ण था। इसके बाद उसने अपना, अपने वैधव्य के लम्बे तपस्या-पूर्ण काल का, उससे पूर्व के प्रारम्भिक अपने जीवन का, जिसकी स्मृति-रेखाएँ धुँधली हो गईं थीं, धीरे-धीरे नीलू की पीठ पर, सिर पर हाथ फेरते-फेरते, उसे और भी हृदय के पास लाकर कहना शुरू किया। इसके बाद उसने महेन्द्र का जन्म, बाल-चापल्य, शिशुभाव, कैशोर, यौवन सब कुछ धीरे-धीरे कहा। नीलू यह सब सुनते-सुनते आनन्द-विभोर हो गई। स्नेह और सौहार्द मूर्तिमान-सा होकर उसके

आगे क्रीड़ा करने लगा। और वह सोचने लगी, उस पुरुष के सम्बन्ध में जिसके साथ एक रात, पहिली रात, उसने एक ही कमरे में व्यतीत किये हैं, परन्तु दोनों ने एक दूसरे को स्पर्श नहीं किया है। नीलू को ऐसा प्रतीत हुआ कि वही पुरुष उसका चिरपरिचित है। आज वह कहीं चला गया है। नीलू के प्राण रुदन करने लगे। वह कहाँ चला गया? क्यों? उसने क्यों नहीं बलात उसे उठा कर छाती से लगा लिया? क्यों नहीं उसने उसे अपने में लीन कर लिया? क्यों वह निष्ठुर, निमर्म उसे उसके माता-पिता के अंचल से छीन लाया और यहाँ बैठा कर अन्तर्धान हो गया? नीलू जैसे शून्य आकाश में उड़ने लगी। हठात् गृहणी ने देखा, नीलू उसकी गोद में फफक-फफक कर रो रही है। उन्होंने घबड़ा कर कहा—क्यों बेटी, रोती क्यों हो?

परन्तु नीलू का रोना रुका नहीं।

गृहणी का प्यार पाकर वह और भी रोने लगी। बहू के इस रोने से गृहणी को सुख मिला। उसने समझ लिया कि उसी के बेटे के वियोग में बहू का यह रोना है। बहुत देर सम-झाने-बुझाने के बाद गृहणी ने नीलू को चुप किया। उसके चुप होने पर उसने कहा—बेटी, एक बात अम्मा को बता दोगी? देखना लाज न करना, अम्मा से सुख-दुख छिपाकर फिर उसे कहाँ रखोगी?

नीलू ने प्रश्नात्मक दृष्टि से सास के मुख की ओर देखा।

उसी मुख पर हाथ फेर कर बृद्धा ने कहा—कहो तो बेटी, महेन्द्र ने तुम्हारे साथ कुछ बुरा व्यवहार किया है?

"नहीं"—नीलू ने झटपट गर्दन हिला दी।

"तुम उससे किसी बात पर नाराज हो?"

"नहीं।"

"तो बेटी, कल शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त में तुम एक न हो सके ?"

"नहीं ।"

"क्यों भला ?"

नीलू क्या जवाब दे। वह चुप रही। सास के दुबारा पूछने पर उसने कहा—मैं नहीं जानती अम्माँ।

"प्यारी बेटी, इस बात पर तुम्हें विचार करना होगा, यह तो बहुत बुरा हुआ।"

नीलू ने भी समझ लिया कि बहुत बुरा हुआ, पर क्यों ? और वह उसकी कहाँ तक जिम्मेदार है, यह वह कुछ भी न जान सकी। जैसे उसकी बुद्धि कुण्ठित हो गई हो। बुढ़िया ने फिर और बात नहीं बढ़ाई। उसने कहा—अच्छा बेटी, अब तुम नहाओ-धोओ और कुछ जलपान करके आराम करो। यह तो जीवन के सुख दुःख की बातें हैं। हम दोनों माँ-बेटी फिर कभी सब बातों पर विचार करेंगी।

नीलू भी इस समय सास के पास से उठना चाहती थी। वह चुपचाप उठकर अपने कमरे में आ बैठ गई। उसकी दृष्टि उस खिड़की पर थी जहाँ महेन्द्र ने रात काटी थी। जो तकिया उन्होंने काम में लिया था, वह वहीं पड़ा हुआ था। नीलू का जी हुआ कि उसे उठा कर छाती से लगा ले। पर वह वैसा न कर सकी। अब वह सब ओर से मन हटा कर पति का ध्यान करने लगी। महेन्द्र मूर्तिमान होकर उसके सामने खड़े हो गये। वह एकटक जैसे उन्हें देखने लगी। उन्होंने रात में जो बातें कही थीं वे एक-एक करके उसे प्रत्यक्ष सुनाई देने लगीं। वह सोचने लगी—क्यों मैंने इस सहृदय नररत्न को आत्मार्पण नहीं किया ?

एक मधुर आवाज़ सुन वह चौंकी। किसी ने कहा—भाभी!

नीलू ने देखा—मणि चौखट से चिपट कर आँखों और होठों में हास्य बखेर रही है। नीलू को अपनी तरफ देखते देख कर उसने कहा—मैं भीतर आऊँ भाभी?

नीलू ने हँस कर दोनों बाँहे फैला दीं और मणि नीलू से लिपट गई। नीलू ने हँसते-हँसते कहा—इतनी देर में आई?

"मैं ज़रा काम में लगी थी भाभी, अम्माँ को फ़ुर्सत नहीं।"

"क्या काम करती थीं, कहो तो?"

"सारा आँगन झाड़ा था—बर्तन भी साफ किये थे।"

"बर्तन साफ़ किये थे?"—नीलू ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा और फिर उसके दोनों छोटे-छोटे हाथों को अपने हाथ में लेकर कहा—"ऐसे प्यारे कोमल हाथों से तुम बर्तन मलती हो मणि?"

"अम्माँ जब कर सकती हैं तो करना पड़ता है भाभी।"

"कहारिन क्यों नहीं लगातीं?"

"अम्माँ को यह पसन्द नहीं है, हम लोग सब काम अपने हाथ कर लेते हैं।"

"सब काम क्या?"

"यही पानी भरना, आटा पीसना, घर झाड़ना-बुहारना, लीपना और बर्तन मलना।" और भोजन कौन बनाता है? "पिता जी के लिए अम्माँ बनाती हैं और सब के लिए मैं।"

"तुम इतनी नन्हीं सी मणि इतना काम करती हो, तुम्हें कष्ट नहीं होता?"

"नहीं भाभी।"

नीलू ने उसके छोटे-छोटे गोरे-गोरे हाथ चूम लिये, फिर कुछ सोच कर कहा—तुम्हारे हाथ खाना मैं खाऊँगी, खिलाओगी तो ?

"इसीलिए तो आई हूँ भाभी। अम्माँ ने कहा है, तुम्हें मेरे साथ चलना होगा और हमारे यहाँ खाना होगा आज।"

"पर सब चीज़ तुम्हारे हाथ की बनी होनी चाहिए रानी, समझी ?"

"अम्माँ मानें तब न, वे सुबह ही से रसोई में बैठी क्या-क्या बना रही हैं ?"

"बस तो मैं खा चुकी।"—नीलू ने रूठ जाने का ढोंग किया। पर बालिका गले से लिपट गई। उसने कहा—"तुम चलो तो भाभी, मैं भी कुछ बना कर खिला दूँगी।"

"अच्छी बात है, पर अभी तो तुम कुछ खाओ-पीओ।"—नीलू ने बहुत सी मिठाई लाकर मणि के सामने रख दी।

मणि ने लजाकर कहा—नहीं, अभी नहीं भाभी, अभी तुम चलो।

मिठाई का एक टुकड़ा ज़बर्दस्ती उसके मुँह में ठूँसते हुए नीलू ने कहा—खाओ, खाओ, भाभी के हाथ की मिठाई बड़ी मीठी होती है।"—मणि ने हँसते नेत्रों से नीलू को देखा और एक बड़ा सा टुकड़ा उठाकर नीलू के मुँह में ठूँस दिया। दोनों सखी खिलखिलाकर हँस पड़ीं। नीलू क्षण भर को दुःखपूर्ण वातावरण जैसे भूल गई। वह उस बालिका के साथ बालिका बन गई। मणि को पाकर नीलू ने जैसे एक आत्मीय पा लिया। जब वह मणि को खूब ठूँस-ठूँस मिठाई खिला चुकी, तब मणि ने कहा—चलो भाभी अब हमारे घर।"

"अम्माँ से पूछ तो लो पहले।"

"पहिले ही पूछ लिया है अम्माँ से भाभी।"

यह खूब रही, दुनिया के सब काम उससे बिना पूछे दूसरे पहले से तय कर देते हैं। यह नीलू की दावत भी उससे बिना पूछे ही मन्जूर कर ली गई थी। पर नीलू इस बार हँस दी। धनिया ने तभी आकर कहा—बहू रानी, आप नहा लीजिए। सब सामान ठीक-ठाक है।

नीलू ने हँसकर कहा—"पर धनिया, मणि क्यों आई है जानती हो, मुझे अपने हाथ का खाना खिलाने ले जाने के लिए। जाओ जरा अम्माँ जी से पूछती आओ।" बहू रानी का हास्य से उत्फुल्ल मुख देख धनिया हरी हो गई। उसने हँसते-हँसते गृहिणी के पास से लौटकर कहा—"बहू रानी, अम्माँ जी ने आज्ञा दे दी है, उन्होंने मणि रानी को बुलाया है, आप तब तक नहा लें।"

नीलू नहाने और मणि गृहिणी के पास चाली गई।

१२

महेन्द्रका अध्यवसाय और योग्यता बहुत भारी थी। उनका व्यक्तित्व भी बहुत ऊंचा था। उनके ज्ञान का भण्डार असीम था। यूनिवर्सिटी में उनके पहुँचने पर तहलका मच गया। पार्टियों, दावतों, उत्सवों की धूम मच गई, दो सप्ताह तक उन्हें दम मारने की फुरसत न मिली। रामधन उनका पुराना नौकर उनके साथ था। वही उनके खाने-पीने की सब व्यवस्था रखता था। उन्होंने भौतिक रसायन के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी खोज की थी। उसी गवेषणा पर वे डॉक्टरेट प्राप्त कर सके थे। भारत सरकार ने उनके लिए रिसर्च की व्यवस्था कर दी थी और इसके लिए एक अच्छी लेबोरेटरी स्थापित करने के लिए तीन लाख रुपये की सहायता की थी। महेन्द्र ने सोचा वे सिर्फ ३ सौ रुपया रख कर शेष सब वेतन इसी अन्वेषण में लगाते रहेंगे। उन्होंने निश्चय किया था कि २००) घर खर्च के लिये माता को भेजेंगे और १००) अपने काम में लेंगे। रामधन को उन्होंने सब बातें समझा दी थीं। वह बूढ़ा आदमी था, मालिक को मालिक नहीं, देवता समझता था। उसका एक बेटा महेन्द्र के बराबर ही था। वह १८ वर्ष का होकर मर गया था। तब से रामधन की पुत्र की ममता महेन्द्र में आ गई थी। महेन्द्र उसे नौकर नहीं, परिवार का एक बड़ा आदमी समझते थे।

लाहौर आने पर जब दस दिन बीत गये तब एक दिन रात को जब महेन्द्र खा-पीकर आराम कुर्सी पर लेट गये, तो

रामधन ने धीरे-धीरे भीतर आकर कहा—भैया, अम्माँ को खत लिखा है ?

"नहीं तो दादा, फ़ुरसत ही कहाँ मिली।"

"अम्माँ के ख़त आये तो हैं ?"

"हाँ, दो आये हैं।"

"वे अच्छी हैं न ?"

"लिखा है अच्छी हैं।"

रामधन क्षण भर चुप रह कर बोला—मैं कागज कलम लाता हूँ। अम्माँ को एक ख़त लिख दो भैया।

रामधन बिना जवाब की प्रतीक्षा किये चला गया। लिखने का सामान उसने सामने टेबुल पर लाकर रख दिया। और सामने खड़ा हो गया। महेन्द्र ने क़लम उठाया। पर वे बड़ी अड़चन में पड़े, ख़त वे अम्माँ को लिखें या नीलू को। इसी सोच में वे पड़ गये। रास्ते भर नीलू का ध्यान उन्हें विकल कर रहा था। यहाँ आने पर वे अपने कार्य में व्यस्त रहे। नीलू ने उनकी द्विविधा का अन्त कर दिया था—वह किसी गैर की नहीं है, पर उनकी है या नहीं, नीलू ने इसी में इधर-उधर किया था। पर क्या वह उनकी पत्नी नहीं। फिर उसे ऐसा अधिकार कहाँ है ? बहुत सोच विचार करने पर भी वे नीलू को अविश्वासी न ठहरा सके। उन्होंने सोचा ठीक है। नीलू ने क्या मुझे पसन्द किया, चुना ? एकाएक उसे मेरी पत्नी बनना पड़ा और मेरे साथ आना पड़ा, उसकी सम्मति, सहमति कुछ नहीं ली गई। इस युग में यह सब ठीक नहीं है। रही नियति की बात, यदि वह भी है तो भला स्वयं देखने-भालने, चुनने से क्या टलेगी ? नीलू का विचार शुद्ध और न्याय-संगत है। मुझे अपना पतित्व उसपर लादना नहीं

चाहिये, मैं नहीं लादूँगा। परन्तु यदि वह मुझे पसन्द न करे तो बचने की जगह कहाँ है? आज नीलू किसी को नहीं चाहती, परन्तु यदि कल चाहे तो, क्या मैं उसमें बाधा दे सकता हूँ? नहीं-नहीं, मैं नीलू को स्वतंत्रता दूँगा। वह बिना इस बात का विचार किये कि वह मेरी विवाहिता पत्नी है। मेरे विषय में अपनी राय कायम करेगी और यदि वह चाहेगी······'महेन्द्र उलझ गये। उन्होंने कलम हाथ से रख दी।

रामधन ने कहा—खत लिखा नहीं भैया?

"खत! हाँ लिखता हूँ।"—उन्होंने फिर कलम हाथ में लिया, पर लिख नहीं सके। नीलू को खत न लिखना निष्ठुरता होगी, पर उसे कैसे लिखा जाय? फिर माता को छोड़ उसे कैसे प्राधान्य दिया जाय? परन्तु यदि नीलू को खत न लिखा गया तो······महेन्द्र कुछ भी निर्णय न कर सके।

रामधन ने कहा—क्या सोच रहे हो भैया?

"कुछ नहीं दादा, मैं सोचता हूँ अम्माँ को तुम्हीं एक खत लिख दो। यहाँ सब ठीक-ठाक है। फिक्र न करें। मैं फिर जरा फुर्सत होने पर लिख दूँगा।"—उन्होंने कागज, कलम सामने से सरका दी। रामधन महेन्द्र की प्रकृति और उनकी मर्यादा को भी जानता था। वह चुपचाप सामान उठाकर बाहर चला गया। महेन्द्र इस समय अपनी ज्ञान-गरिमा भूल गये। नीलू सहसा-मूर्तिमान् होकर उनकी आँखों में आ गई। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि नीलू उनके जीवन में एक अभाव है। उसके बिना वे अपूर्ण हैं। नीलम कैसे उनसे दूर हो सकती है? कैसे वे विसर्जन कर सकते हैं? कैसे वे उसे अबाध कर सकते हैं? आज उन्होंने देखा नके रोम-रोम में नीलू है। उसकी स्मृति, उसका विहार, उनकी आत्मा को झंकृत

कर रहा है। उसके बिना उनका सब व्यर्थ है। उस दिन उसी के साथ एक कमरे में सोने पर भी वे उसका स्पर्श न कर सके। क्यों? नीलू किसी और की है? नहीं, उन्हीं की है। हाँ हाँ तभी तो उन्हें यह अधिकार प्राप्त होकर भी कुछ न मिला। सो क्यों? महेन्द्र बहुत बेचैन होकर यह सब सोचने लगे। उन्हें संसार शून्य-सा लगने लगा। उनका हृदय हाहाकार करने लगा।

१३

रसायन-शास्त्र बड़ी गहन विद्या है। पाश्चात्य रसायनवेत्ताओं का मत है कि सोना चाँदी आदि मूल धातु है। परन्तु महेन्द्र का कहना था, वे सब मिश्रण हैं और कृत्रिम बनाये जा सकते हैं। पुराने कीमियागर लोगों के बहुत किस्से भारत में प्रसिद्ध हैं। पर महेन्द्र का कहना उन किम्वदन्तियों के आधार पर न था। उन्होंने भारतीय प्राचीन रासायनिक ग्रन्थों का मनन किया था, पारद शास्त्र और लोहवेध के सिद्धान्तों पर उन्होंने बड़ी गवेषणा की थी। वे इस निर्णय पर पहुँचे थे कि पारद, ताम्र और कुछ उपरसों के मिश्रण से तैयार किया जा सकता है। मध्यकालीन भारत में विख्यात् नालन्दा विश्वविद्यालय में सिद्ध नागार्जुन और दीपङ्कर की प्रख्यात सिद्धियों की सामग्री-साधन उन्होंने खण्डहरों से उपलब्ध की थी और वे अब एक विशाल लेबोरेटरी में अपने प्रयोगों को सफल करने में लगे थे। रामधन उनके इस विचित्र कार्य में भी सहायक था। कॉलेज के काम से जो समय बचता वे उसे अपनी इसी लेबोरेटरी में लगाते थे। इसमें पारे को उत्ताप सहिष्णु करने के लिए उन्होंने बहुत शक्तिशाली भट्ठियाँ बिजली के संयोग से बनाई थीं। भट्ठियाँ तैयार होने पर उन्होंने एक दिन रामधन से कहा—दादा, आज जल्दी खा-पी लो, हमें रात भर काम करना होगा।

"रात भर! कौन काम करोगे भैया? तीन दिन से तुमने पल भर भी तो आराम नहीं किया।"

"तुम्हें मालूम है दादा, हम क्या बना रहे हैं?"

"मैं क्या जानूँ भैया।"

"हम पारस बना रहे हैं।"

"पारस!"

"हाँ, सुना है तुमने पारस का नाम? उसके छूते ही लोहा सोना हो जाता है।"

"सुना तो है भैया, पर वह सब तो गप्पे हैं!"

"नहीं दादा, वह सच है। मैं पारस बना दूँगा। वह लोहा ही नहीं; जिस धातु को छू देगा वही सोना हो जायगा। और जिस मनुष्य के पास रहेगा वह अजर-अमर हो जायगा।"

रामधन ने हँस कर कहा—अच्छी बात है भैया! बनाओ पारस, फिर मैं बहू रानी के लिये एक सोने का महल बनावाऊँगा।

महेन्द्र ने भी हँसना चाहा पर वे हँस न सके। उन्हें स्मरण हो आया कि दो मास में न नीलू ने उन्हें खत लिखा, न उन्होंने नीलू को। वे एक ठण्डी साँस लेकर लेब्रोटरी में घुस गये। पीछे-पीछे रामधन भी गया। उस अद्भुत पेचीली भीमकाय बिजली की भट्टी को देखकर रामधन ने आश्चर्य-चकित होकर कहा—इसमें क्या होगा भैया?

महेन्द्र के मस्तिष्क में बहूरानी का सोने का महल घूम रहा था। उन्होंने चौंक कर कहा—यही तो वह चीज है, जिसमें पारसमणि बनेगी।

"पर, पारस तो पत्थर होता है?"

"नहीं, यह पारे का वह रूप है जो किसी भी उत्ताप पर स्थिर रह सकता है। जानते हो, पारा आग पर रखने ही से उड़ जाता है।"

"जानता हूँ।"

"अगर वह आग पर जैसा का तैसा पड़ा रहे, उड़े नहीं, तो क्या होगा ?"

"भगवान् ही जाने भैया क्या होगा।"

महेन्द्र ने बालक की तरह हँस कर कहा—वही तो भेद की बात है दादा। अगर मैं पारे को आग पर स्थायी कर सका तो...

रामधन ने कुछ भी न समझ कर कहा...तो ?

"सुनो, मैं धीरे-धीरे पारे को आँच दूँगा। और ऐसी तरकीब करूँगा कि वह आँच को सह ले। बढ़ाते-बढ़ाते आँच का उत्ताप बहुत तेज हो जायगा। पारा आँच पर स्थिर रहेगा, उड़ न सकेगा। उसके परमाणु परस्पर संगठित हो जायँगे और वह कड़ा होता जायगा। मेरी यह भट्ठी इतनी तेज आँच देगी कि संसार में कभी इतना उत्ताप प्रकट नहीं किया गया था। उस भीषण उत्ताप को सह कर वह पारा संसार की प्रत्येक वस्तु से कठोर, अति कठोर बन जायगा। बस उसी में स्पर्श-बेध की शक्ति पैदा हो जायगी और वही पारस कहलायेगा।"

रामधन समझा कुछ नहीं, पर उसने उत्साह से कहा—अच्छी बात है, मैं भी देखूँगा उस पारस को।

महेन्द्र जरा मुस्कुराये, उन्होंने काम में हाथ लगाया। सहस्राधिक बिजली की धाराएँ, भाँति भाँति की चमक दिखा कर दौड़ने लगीं। विद्युत-यन्त्र भीषण वेग से घूमने और हिलने लगे। महेन्द्र फुर्ती से कभी इधर और कभी उधर दौड़-धूप करने लगे। रामधन भयभीत-चकित हो, आँखें फाड़ फाड़कर यह सब देखता रहा। बीच-बीच में वे जो आदेश देते जाते थे, रामधन उन्हें पूरा करता जाता था। बिजली की सहस्र धाराएँ कराल सर्प की भाँति

जीभ लपलपाती दीख पड़ती थीं। अचानक एक जोर की चीख मारकर महेन्द्र दूर जा गिरे।

एक भयानक शब्द हुआ और सहस्र उल्कापात की भाँति एक दुर्धर्ष प्रकाश होकर घोर अन्धकार छा गया। महेन्द्र को गिरते रामधन ने देख लिया था। वह तुरन्त वहाँ जा पहुँचा और उनके मूर्च्छित शरीर को कन्धे पर उठा कर बाहर ले आया। उनके सोने के कमरे में उन्हें लिटा कर उसने त्रस्त भाव से देखा—उनके शरीर पर कोई आघात तो नहीं है; पर वे बिल्कुल बेहोश हैं तथा उनका शरीर ऐंठ गया है। रामधन धीरजवान् पुराना आदमी था। उसने फौरन फोन उठा कर प्रिन्सिपल और डॉक्टर को सूचना दे दी। थोड़ी ही देर में महेन्द्र का उपचार होने लगा। रामधन ने तुरन्त घटना का एक तार भी गृहिणी को दे दिया।

१४

होश में आने पर महेन्द्र ने नीलू को अपने सिरहाने अविचल भाव से बैठे देखा। कुछ क्षण तक वे नीलू को पहचानने की चेष्टा करते रहे। पहचानने के बाद हर्षातिरेक से, एक प्रकार से वे चीख पड़े। फिर भी कमजोरी के कारण उनकी आवाज बहुत धीमी निकली। उन्होंने हाथ बढ़ा कर नीलू के हाथ को छुआ और कहा, कब से बैठी हो नीलू?

"हम लोग सुबह ही पहुँच गये थे। परन्तु आप बोलिए मत, डॉक्टर ने मना किया है। अम्माँ जी अभी सोने गई हैं, मैं उन्हें बुला लाती हूँ।"

महेन्द्र ने नीलू का हाथ दबा कर कहा—सोने दो उन्हें, नीलू! तुम बैठो, कितना बजा है?

"दो"

"दो?—तो तुम तमाम रात बैठी रहीं? परन्तु मेरा सिर घूम रहा है।"

"क्या मैं नर्स को बुलाऊँ? मैंने उसे जिद करके आराम करने भेज दिया है। वह पास ही के कमरे में है, उसने कहा था कि आवश्यकता होते ही बुला लेना।"

"उसकी कुछ जरूरत नहीं है"—महेन्द्र ने धीमे स्वर में कहा और वे आँख बन्द करके पड़ गए। महेन्द्र का हाथ नीलू के हाथ पर था। उसे हटाने का साहस नीलू को न हुआ। वह एक अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करने लगी। एक अज्ञात बन्धन और आकर्षण उसे महेन्द्र के पास ला रहा था।

कुछ देर के बाद महेन्द्र को अच्छी तरह चेत हुआ। उनका मस्तिष्क ठीक-ठीक काम करने लगा। उन्होंने सब घटनाओं पर विचार किया। सब बातें उन्हें याद आ गईं। उन्होंने धीरे से नीलू का हाथ दबा कर कहा—नीलू क्या रामधन ने तुम्हें तार दिया था?

"हाँ, आपको हुआ क्या था?"

"अकस्मात् गलती हो गई। मगर खैरियत हुई कि मैं स्विच के पास ही था, धक्का खाते-खाते मैंने स्विच ऑफ कर दिया था। नहीं तो नीलू अब हम न मिल सकते।"—यह कहकर महेन्द्र चुपचाप तकिये पर पड़े रहे। थोड़ी देर में उन्होंने चौंक कर देखा नीलू रो रही है।

"रोती हो नीलू"—महेन्द्र ने पूछा। परन्तु नीलू के उस रुदन को देख कर महेन्द्र आनन्द मे उन्मत्त हो उठे! उन्होंने असंयत होकर तकिये के सहारे उठकर नीलू के आँसू पोंछे, और उसके हाथ पर तनिक जोर देकर उसे ज़रा नीचे झुकाया, और साहस कर उसके होठों पर एक कम्पित चुम्बन अंकित कर दिया। नीलू विरोध न कर सकी। महेन्द्र ने और निकट लाने के लिए उसे अपनी ओर को खींचा; परन्तु उसमें असफल हो वे क्लान्त से तकिये पर पड़ रहे। कुछ देर बाद उन्होंने कहा—नीलू!

नीलू ने सापेक्ष भाव से उनकी ओर देखा!

महेन्द्र ने कहा—नीलू, क्या यह ईश्वर की असीम कृपा नहीं हुई?

नीलू अपने को रोक न सकी। उसने कहा—आप ऐसा जोखिम का काम करते क्यों हैं? मगर मुझे आप से बातें न करनी चाहिए। डॉक्टर ने····

"उसकी चिन्ता न करो नीलू, तुमसे बात करने से मुझमें बल, साहस और जीवन उत्पन्न होता है।"

नीलू में जैसे स्त्री-भाव कहीं छू गया। उसने कहा—सच?

"क्या विश्वास नहीं कर सकतीं मुझपर?"

"विश्वास करती हूँ।"—नीलू ने धीमी गम्भीरवाणी से कहा—परन्तु यह असर बातें ही करने में है। पत्र लिखने में शायद······"

सहसा जैसे सहस्र आलिंगन महेन्द्र को उपलब्ध हो गये। उन्होंने आनन्दातिरेक से विभोर होकर कहा—नहीं, नहीं नीलू, मैंने जो तुम्हें खत नहीं लिखा जानती हो, मैं बड़ी द्विविधा में था।

"कैसी द्विविधा थी?"

महेन्द्र जवाब का रास्ता न पाकर इधर-उधर करने लगे। उन्होंने मुस्करा कर कहा—तुम्हीं ने पत्र क्यों नहीं लिखा!

"मैं किसे लिखती?"

"क्यों मुझे!"

नीलू चुप हो रही, वह मुँह फाड़कर यह कह न सकी कि "आप होते कौन हैं? मैं आपको कैसे लिखती?" पर महेन्द्र ने धीरे से अपने हृदय के घाव को जैसे छुआ। उन्होंने कहा—समझ गया।

नीलू जैसे चमक पड़ी, उसने कहा—क्या समझ गये?

महेन्द्र ने मुस्करा कर कहा—अपरिचित को तुम पत्र लिखती भी कैसे? इसी संकोच से शायद न लिख सकीं।

स्त्रियों ने व्यंग सहन करना नहीं सीखा। तीखा व्यंग पाकर नीलू ने कहा—"आप तो सब कुछ जानते ही हैं। हाँ, आपको क्या द्विविधा थी, सुन सकती हूँ?"

नीलू की वाणी में तेजी थी।

महेन्द्र ने घबरा कर कहा—विशेष कुछ नहीं नीलू! वास्तव में वह सिर्फ आत्मा की कमजोरी थी। मैं स्वीकार करता हूँ, मुझसे यह अपराध हुआ।

नील ने कुछ जवाब नहीं दिया। महेन्द्र ने उसका हाथ अपने दोनों हाथों में ले, प्रेम से कहा—मुझे माफ करोगी नीलू?

"किस बात के लिए?"

"मेरी मूर्खता के लिए।"

"उसकी आपको आवश्यकता अनुभव होती है या आप यों ही शिष्टाचार प्रदर्शित कर रहे हैं?"

"नहीं नहीं नील, शिष्टाचार नहीं"—महेन्द्रने उतावली से कहा।

"तो फिर आप यह कहिये कि वह द्विविधा क्या थी जिसे अब आप मूर्खता कहते हैं? मैं यह मान कैसे लूँ कि आप ऐसी आसानी से मूर्खता कर सकते हैं?"

"पर मैं सच कहता हूँ।"

"सच ही आपको कहना चाहिये। कहिए वह द्विविधा क्या थी?"

"महेन्द्रने करुण दृष्टि से नीलू की ओर देखकर कहा—द्विविधा का कारण तो तुम जानती हो नीलू, एक अपरिचित व्यक्ति क्या सम्बोधन करके किसी को पत्र लिख सकता है?

नीलू जैसे तैयार बैठी थी, वह झिपी नहीं। बोली—अपरिचित को पत्र न लिख सकना क्षम्य हो सकता है, परन्तु यदि कोई किसी कारणवश अपरिचित समझता है और दूसरे की दृष्टि से वह अज्ञानी है तो वह तो अपरिचित होने का बहाना ढूँढ़ सकता है। कहिए तो मैं भी क्या आपकी अपरिचित थी? कहिए हाँ। फिर मैं पूछूँगी कि फिर आप किस लिए अपने असाध्य अधिकार से

मुझे अपने घर ले आए। और वहाँ मुझे छोड़ कर इतमीनान से यहाँ चले आये। मुझसे पत्र लिखने का अनुरोध किया था आपको याद है ?

"याद है, पर तुमने अनुरोध माना नहीं न ?'

"नहीं।"

"उस वक्त तो शायद स्वीकार कर लिया था ?"

"हाँ, कर लिया था।"

"पीछे विचार बदल लिया ?"

"जी हाँ, उस वक्त मैंने समझा था आप का यह अनुशासन है। जब आपने मुझे आक्रान्त किया है तो मुझे व्यर्थ का अपना झूठा असहाय घमण्ड त्याग देना चाहिए। इसीसे आपका यह छोटा सा अनुशासन मैंने स्वीकार कर लिया था। पीछे देखा, आप काफी सभ्य हैं, शिष्ट हैं, स्त्रियों की प्रतिष्ठा का ख्याल रखते हैं, नये विचारों में आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं। तब मैंने सोचा—अनुशासन नहीं था, अनुरोध था, उसे पालन करना मैंने ठीक नहीं समझा—उसमें मेरा आत्म-सम्मान बाधक होता था। शायद आप मेरे आत्म-सम्मान को उल्लेखनीय न समझेंगे।"

"कभी नहीं नीलू, परन्तु मुझे एक बात का बड़ा दुख है!"

"किस बात का ?"

"तुमने समझा है कि मैंने तुम्हें आक्रान्त किया है!"

इसमें दुःख की क्या बात है ? स्त्रियाँ सदैव से ही पुरुषों द्वारा आक्रान्त की जाती हैं। पुरुष उनका सौभाग्य है, पुरुष उनका पति है। वह उसे जीत कर ही तो अपने घर लाता है। संसार की सभी सभ्य-असभ्य जातियों में स्त्रियाँ पुरुषों की जायदाद हैं। भारत में भी हैं। पर ये जायदादें दानखाते की हैं। घरमें रखने की नहीं।

सो मेरे माता-पिता ने भी उपयुक्त काल में मुझे आपको दान कर दिया था—आप मेरे मालिक और मैं आपकी जायदाद हूँ। मेरा आपा खो गया है। मेरे सब स्वत्व खतम हो गए हैं। मेरा अस्तित्व नष्ट हो चुका—सिर्फ इसलिये कि मैं पुरुष नहीं, स्त्री हूँ। आपका मुझ पर असाध्य अधिकार है। उस अधिकार के बल पर उस दिन, आप बिना मेरी अनुमति लिए मेरे कमरे में घुस आए थे और फिर बिना मेरी अनुमति के आप मुझे अपने घर ले आए। आप ही ने नहीं, मेरे भी माता-पिता ने इस काम में मेरी अनुमति की आवश्यकता नहीं समझी। उन्होंने मुझे इसीलिए तो पैदा ही किया था। मैं स्त्री हूँ, यह बार-बार भूल जाती हूँ। और कोई मेरे कानमें कहता है तुम भले ही स्त्री हो; पर तुम्हें आक्रान्त करने का किसी को अधिकार नहीं है, मैं जब तक बहरी नहीं हो जाती, अपने कान में कही जाने वाली बात मैं अवश्य सुनूगीं।

महेन्द्र ने विचलित होकर कहा—नीलू मेरे विषय में तो तुम बिल्कुल धोखे में हो, यद्यपि निस्सन्देह ऐसा ही हुआ है, मेरे तुम्हारे सम्बन्ध में यद्यपि तुम्हारी अनुमति नहीं ली गई है! फिर भी मैंने तुम्हें न आक्रान्त किया है, न किया चाहता हूँ। कुछ सामाजिक जिम्मेदारियाँ मनुष्य पर अनायास ही आ पड़ती हैं। मेरे तुम्हारे बीच भी ऐसा ही हुआ है। उन्हें तो मैं अवश्य ही पालन करूँगा, परंतु नीलू? मैं तुम्हारी अनुमति और स्वीकृति के बिना तुम पर अपने पतित्व का बोझ नहीं डालूँगा। तुम नहीं जानती नीलू कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ—तुम मेरे हृदय ही में नहीं, रोम-रोम में व्याप्त हो; फिर भी मैं तुम्हारी युक्ति को स्वीकार करता हूँ। मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूँगा जब तुम मुझे अपना कर, अपनी आत्मा के निकट मेरा आवाहन करोगी। अब

तुम समझ गई होगी, मेरी द्विविधा यही थी—मैं तुम्हें क्या कह कर खत लिखता। तुम मेरी जो कुछ हो, वह तो तुम्हें स्वीकार ही नहीं। फिर क्या मैं तुम्हें तनिक अपरिचित पुकार सकता हूँ? नहीं-नहीं नीलू, तुम भले ही यह साहस करो, मैं नहीं कर सकता।

महेन्द्र चुप हो गये। उनकी आँखें गीली हो गईं। नीलू भी कुछ न बोल सकी। टन-टन करके चार बजे।

नर्स ने आकर कहा—'अब आप जाकर सोइये, यहाँ मैं हूँ।

नीलू चुपचाप उठकर चली गई। महेन्द्र करवट बदल तकिये में मुँह छिपाकर हृदय दबा, रोने का उपक्रम करने लगे।

———

१५

वह अननुभूत-पूर्व कम्पित चुम्बन नीलू को जैसे गुब्बारे पर बैठा कर आकाश को ले उड़ा। अपनी प्रकृति की उत्तेजना में, वह उस विगलित रात्रि के एकान्त में विवाद तो करती गई; पर उसके बाद जैसे वह आत्म-ज्वर से भस्मसात होने लगी। उसके उत्ताप का कारण तो यह था कि सब कुछ आप ही आप होता चला जा रहा है और मेरा यह निरुपद्रव विद्रोह किसी काम ही नहीं आ रहा है। विवाह, विदा, नवीन सम्बन्ध, पति-स्पर्श, चुम्बन, अलाप, एकान्तवास सभी कुछ तो एक के बाद एक होता जा रहा है। यह नारी शरीर जैसे इन सबका युगयुगान्त का अभ्यस्त हो। आत्मार्पण तो हो रहा है; फिर नहीं क्या हो रहा है? उसे कितनी बार गुस्सा आया; परन्तु महेन्द्र पर नहीं, अपने पर। उसने महेन्द्र को पत्र नहीं लिखा—इसका उसे भारी मलाल था, यह तो उस रात की बात-चीत से ही प्रगट है। महेन्द्र के प्रति एक आसक्ति का भाव, उसके वहाँ से नर्स को हटाकर, बैठने और आँसुओं में निहित था। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे खुद उसी का शरीर उसकी आत्मा से विद्रोह कर रहा है। वह चाहती है आत्मनिर्णय और आध्यात्मिक स्वातंत्र्य और उसका शरीर चुपचाप आत्मार्पण कर रहा है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि अब तक उसे क्रोध और उत्तेजना इस विषय की थी कि महेन्द्र ने उसे पत्र कभी नहीं लिखा। अब उसी रात्रि की चमत्कारिक सन्धि-विग्रह के बाद, वह फिर वैसे ही चुम्बन-हरण की प्रतीक्षा कर रही थी। उस दिन को ८-१० दिन बीत गये। महेन्द्र कुछ घायल नहीं हुए थे.

सिर्फ बिजली का धक्का खा गये थे। ३-४ दिन में वे काम लायक होकर काम पर लग गये। उस दिन उन्होंने नीलू से कहा था कि वे कभी भी उसपर बलात् पतित्व नहीं लादेंगे, फिर भी जो उन्होंने उसे स्पर्श किया, प्यार का चरण अङ्कित किया, यह क्या ठीक हुआ—नीलू क्या उन्हें एक असंयत व्यक्ति न समझेगी? वे लज्जित से हो गये थे। नीलू ने उन्हें निरुत्तर किया था, इस कारण और भी। इसी से कुछ तो नीलू से दूर रहने के ख्याल से और कुछ अपनी लगन के कारण भी वे अधिक समय अपनी लेबोरेटरी में ही लगाने लगे। रामधन को लेकर वे कभी-कभी सारी रात वहाँ रहने लगे। नीलू न जाने क्यों यह आशा करती थी कि वह फिर अवसर निकाल कर नीलू के ऊष्ण होठों पर वही मुग्ध-चिह्न अङ्कित करेंगे। इसमें जितनी देर हो जाती थी नीलू का क्रोध और विरक्ति बढ़ती जाती थी।

गृहणी प्रशान्त सागर की भाँति रहती थी। उसका पुत्र स्वस्थ्य है, अपने काम पर लग्न है, यही उसके संतोष का विषय था; परन्तु बेटे बहू का यह अनमना भाव उसकी दृष्टि से छिपा न था। महेन्द्र के सोने की व्यवस्था नीलू के साथ एक ही कमरे में थी, पर दोनों पृथक शैय्या पर सोते थे। सदैव ही बहुत रात बीतने पर वह अपनी प्रयोगशाला से वापस लौटते थे। और कभी-कभी सारी रात वहीं काम करते रहते थे। नीलू जैसे रात भर जलती रहती थी। वह बहुधा महेन्द्र के आगमन की प्रतीक्षा में बड़ी देर तक जागती रहती, झुँझलाती, फिर सो जाती। कभी-कभी वह जागती ही रहती, और गुप्त रूप से देखती, महेन्द्र चुप-चाप दबे पैर आये, क्षण भर नीलू के पलङ्ग के पास खड़े रहे, एक ठण्ढी साँस ली और अपने बिछौने पर सो रहे।

चाँदनी की एक रेखा गहरे नीले रङ्ग के पर्दे को छान कर

नीलू के शुभ्र ललाट पर पड़ रही थी। १२ बज चुके थे, ९ बजे से १२ तक प्रत्येक घंटे का शब्द नीलू ने उद्वेग से सुना था। उसे नींद नहीं आ रही थी, वह मन ही मन अपने अन्तःविद्रोह की बात सोच रही थी। क्या वह अन्तःकरण से पति को आत्मार्पण कर दे? बिना इस काम के तो उसे सूना ही सूना लगता है। उसके पति जैसे उसकी पर्वाह नहीं करते, इसी से वे उसकी उपेक्षा कर रात-रात भर अपनी प्रयोगशाला में बैठे रहते हैं। मुझे यहाँ स्त्री होने के अपराध में जैसे बाँधकर डाल रखा है—नीलू सोच रही थी। एक धीमी नीले रंग की बत्ती ठण्ढा प्रकाश कमरे में डाल रही थी। महेन्द्र ने बहुत धीरे से कमरे में कदम रखा, द्वार पर ही उन्होंने खड़े होकर नीलू के पलङ्ग पर दृष्टि डाली। खिड़की से आती हुई वह ज्योत्स्ना-रेखा नीलू के ललाट पर शोभा बिखेर रही थी। कुछ क्षण उन्होंने मुग्ध होकर उसे देखा, आहिस्ता से कपड़े उतारे और बहुत सावधानी से पञ्जे के बल चल कर नीलू के सिर-हाने जा खड़े हुए। उसके चाँदी के समान मस्तक पर चाँदनी जो शोभा बिखेर रही थी, उसने उनके संयम और धैर्य को विचलित कर दिया। वे धीरे-धीरे नीलू के मुख पर झुकने लगे। दोनों की श्वासों ने दोनों को जाग्रत कर दिया, शरीर को ही नहीं आत्मा तक को। पौरुष और नारित्व का यह अकस्मात जागरण एक उल्कापात की तरह टकरा गया। नीलू हठात् उठ कर बैठ गई। महेन्द्र विमूढ़ खड़े रह गये।

नीलू ने एकटक महेन्द्र की ओर ताक कर कहा—आप क्या कर रहे थे?

"मैंने तुम्हें जगा दिया, नीलू! मैं····" वे एक दम घबड़ा गये।

"जी नहीं, मैं जाग रही थी, आप क्या सोते समय नित्य ही यह कार्य करते हैं?"

महेन्द्र ने भर्राये गले से कहा—नीलू !......

"पुरुष तो स्त्रियों के संरक्षक हैं—उनके संरक्षण में संसार की स्त्रियाँ अभय हैं। आपका क्या मत है ?"

"नीलू, मैं क्षमा नहीं माँग सकता।"

नीलू चुप रही। सचमुच बातचीत की धारा का प्रवाह अनपेक्षित दिशा में जा रहा है। उसने अपेक्षाकृत शान्त-स्वर में कहा—आज आप जरा जल्दी आ गये।

"हाँ—तो तुम क्या रोज जागती रहती थीं ?"

"रोज तो नहीं, जब कभी नींद आती थी तब मजबूरन जागना पड़ता था; परन्तु इसमें आपको शायद कुछ असुविधा नहीं होती। हाँ, आज.........।"

महेन्द्र कुछ बोले नहीं, चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गये। उनका हृदय क्षोभ और दुःख से परिपूर्ण था।

नीलू ने देखा। उसे आज पति की असहायावस्था पर दुःख हुआ—उसने कहा—आप इतने दुःखित क्यों हैं ?

"मैंने अत्यन्त अपौरुषेय काम कर डाला नीलू !"

"इतनी आत्मप्रतारणा की क्या जरूरत है ? मैं तो आपकी पत्नी हूँ। आपका अधिकार है।"

"नीलू, सिर्फ व्यंगों से मेरा दुःख दूर नहीं होगा—कुछ और कड़ी सजा दे दो !"

नीलू सचमुच मर्माहत हो गई, उसके मुँह से कम्पित कंठ से निकल गया—मैं व्यंग नहीं कह रही हूँ, आपके दुःख पर व्यंग करूँ, क्या मैं इतनी हृदय-हीन हूँ ?

"नीलू, तुम क्या हो ? यह मैं अपने समस्त ज्ञान से भी न समझ सका। मैं सिर्फ यही कहता हूँ कि आज के इस कायर कार्य के लिये मुझे अपनी दृष्टि से मत गिरा देना।

...लू कैसे कहे कि इस कायर काम में कितना सुख है, इसकी याच... ...ह शरीर कर रही है, यह शरीर इसी नाम से तप रही है। ... ...ी अपने गर्व को, अपनी स्वातन्त्र्य की भावनाओं को, यदि ...ी तरह विरुद्ध न कर सके, वह यदि उठ कर दो कदम पर ...ठे ...न की गोद में जाकर कहे, स्त्रीत्व का यह उपहार पुरुष... ...लये समर्पण है और तब वे प्रकृति और पुरुष की भाँति मि... ...; परन्तु स्त्रीत्व क्या है? यही न कि अन्तस्थल के विपरीत आचरण करना।

...नु नीलू चुप रही—बोली नहीं। हठात् उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे महेन्द्र ने अपनी आँखें पोंछी हों।

...संयत होकर नीलू महेन्द्र के पास पहुँची। उसने उनके अत्यन्त निकट जाकर कहा—आप रोते हैं?

"...ीलू, मैं कैसे अपने हृदय की वेदना छिपाऊँ या तुमपर प्रकट करूँ। मैंने बिना तुम्हारी अनुमति तुम्हें प्यार किया और तुम्हारे शरीर पर अधिकार किया। यह क्या है, जानती हो? उस दिन तुमने कहा था कि तुमने किसी को प्यार नहीं किया। माँ-बाप का प्यार और चीज है। वह प्यार जिसमें पीड़ा नहीं है, जिसमें आत्मोत्सर्ग है, आसानी से बखाना नहीं जा सकता है। इसमें आदमी का अस्तित्व खो जाता है। मेरा भी अस्तित्त्व खो गया। तुम मेरे रोम-रोम में रमी हो। मुझे संसार में तुम्हें छोड़ कुछ दीख नहीं पड़ रहा है। मैंने तुम्हें वचन दिया था, पर इसी कारण मैं असंयत हो गया। मुझे तुम दण्ड दे सकती हो।"—एक बार महेन्द्र ने दोनों हाथ फैला कर नीलू का आलिंगन करना चाहा; पर तुरन्त ही उसके हाथ अपने आप नीचे गिर गये।

"आप सो जाइए और ऐसी फालतू बातें मत विचारिए।" नीलू ने काँपते कण्ठ से कहा, और लड़खड़ाती हुई वह अपने पलङ्ग पर चली आई। महेन्द्र भी चुपचाप अपने पलङ्ग पर सो गये। दोनों ही नींद को बुलाने में असमर्थ रहे। दोनों रात भर रोते रहे; पर दोनों ने सावधानता से परस्पर एक दूसरे से छिपाया।

———

१६

दूसरे दिन सुबह जब महेन्द्र कपड़े पहन कर कॉलेज जाने को तैयार हुए तो नीलू असाधारण रीति से चाय लेकर उनके सामने आई। नीलू को चाय लेकर आते देख महेन्द्र एकदम चमक गये। उन्होंने कहा—तुम क्यों, रामधन कहाँ गया ?

"क्या हर्ज है ? एक बार मेरे हाथ की भी चाय पी लीजिए—शायद पसन्द आ जाय।"

महेन्द्र ने कहना चाहा—"मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ?"—पर वे कह न सके। उन्होंने लपक कर ट्रे नीलू के हाथ से ली और मृदुल स्वर में कहा—तुम भी मेरे साथ ही पिओ फिर आज।

"धन्यवाद"—नीलू ने धीरे से कहा और कुर्सी खींच कर बैठ गई।

"धन्यवाद कैसा नीलू ?"—महेन्द्र ने आँखों में वेदना भर कर कहा।

"आपकी कृपा का ?"

महेन्द्र चुप रहे। नीलू को चाय लाते देख उन्हें जो उल्लास हुआ था वह जैसे एकबारगी ही ठण्डा पड़ गया। वे एकटक नीलू को देखने लगे। नीलू प्याले में चाय बनाने लगी। महेन्द्र चुपचाप कुछ सोचने लगे। नीलू ने प्याला बढ़ाते हुए कहा—यह लीजिए।

महेन्द्र ने प्याला अपनी ओर सरका कर कहा—नीलू, कैसे मैं तुम्हारा बन सकता हूँ ?

नीलू ने देखा महेन्द्र की आँखें हाहाकार कर रही हैं। वहाँ

शैतान की जरूरत थी। वह होता तो कहता—आक्रांत कर-आक्रांत कर! जो हमेशा ही पुरुष करते आये हैं। स्त्रियों का बन सकने का और मार्ग ही नहीं है। परंतु वहाँ सिर्फ नीलू थी। उसने चाय का एक घूँट पी कहा—आप प्राप्तव्य को प्राप्त समझ रहे हैं?

"क्या सचमुच मैं तुम्हारा हूँ?"

"अम्माँ जी ने क्या कहा था, याद है?"—नीलू मुस्करा उठी, पर उस मुस्कान में एक ठण्डी ज्वाला थी।

महेन्द्र ने पहली बार ही नीलू का मुस्काना देखा था। नीलू का मुस्काना देख वह किसी अतर्क्य शक्ति के वश हो नीलू को बाहुपाश में भरने को कुर्सी से उठे—पर एक क्षण बीतते न बीतते ही वह मुस्कान एकदम ठण्ढी पड़ गई और महेन्द्र लजा कर धीरे से कुर्सी पर बैठ गये। नीलू ने देखा, उसे ऐसा प्रतीत हुआ—एक आँधी आते-आते रह गई। आती तो वह उसमें उड़ जाती। सास को विवाद में घसीट कर वह पछताई। पर उसने फिर कहा—निश्चय ही हम परस्पर अनुकम्पित हो चुके हैं। आप इस सम्बन्ध में तनिक भी संदेह न करें।

"वही तो बात होने की नहीं नीलू"—महेन्द्र जरा उत्तेजित होकर बोले—"वह सब कुछ नहीं, मैं तुमसे—तुम्हारे व्यक्तित्व से पूछता हूँ कि मैं कैसे तुम्हारा हो सकता हूँ? सिर्फ तुम्हारा।"

"आप अब किसके हैं!"—नीलू ने चाय पीते-पीते पूछा।

"अपनी दृष्टि में मैं भले ही किसी का होऊँ। मैं तुम्हारी दृष्टि में तुम्हारा कैसे हो सकता हूँ नीलू?"

नीलू चुप रही। फिर वह बोली—क्या आप यह नहीं मानते कि प्रत्येक मनुष्य अपना आप है—किसी का होना विडम्बना मात्र है?

"नहीं, मैं यह नहीं मानता, पति-पत्नी तो अवश्य ही एक दूसरे के हैं—अपने नहीं।"

"पति-पत्नी से आपका अभिप्राय क्या है?"

"निश्चय ही दो व्यक्तियों की मित्रता ही नहीं है, पति-पत्नी का सम्बन्ध तो सम्पूर्णतया दोनों का एकीकरण है। नील, तुम नाराज न हो तो मैं दिल खोल कर मन की बात कहूँ?"

"कहिए।"

"पति-पत्नी के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या विचार है?"

"बहुत स्पष्ट, दोनों जीवन-सङ्गी हैं, वे दोनों ऐसे होने चाहिए जिनके स्वभाव, शरीर और विचार एक से हों, और उन्हें परस्पर एक दूसरे को चुनने की स्वतन्त्रता रहनी चाहिये।"

"पर मेरा इन बातों से मतभेद है।"

"किस आधार पर?"

"पहली बात तो यह कि पति और पत्नी परस्पर सिर्फ मित्र ही नहीं हैं। यह न भूल जाना चाहिए कि वे दोनों भिन्न-लिङ्गी हैं। उनके शरीर निर्माण में विपरीतता है। वे दोनों अपूर्ण हैं। उनके शरीर में परस्पर की त्रुटियाँ हैं। वे परस्पर मिलने से पूर्ण होते हैं। स्त्री अपने शरीर में अपूर्ण है, और इसी प्रकार पुरुष भी। दोनों मिल कर एक होते हैं। उनका यह मिलन स्वच्छन्द नहीं है! प्रत्युत वे परस्पर मिलने को विवश हैं, दोनों शरीरों की वितृष्णा है और वह तब तक तृप्त नहीं होती जब तक कि वे एकाकार हो मिल नहीं जाते। इन सब के ऊपर आत्मिक भोग का प्रश्न है। स्त्री-पुरुष प्रत्येक एक दूसरे के लिए आत्मिक भोग हैं। अच्छा कहो तो स्त्री क्या है, यदि पुरुष न हो? इसी प्रकार पुरुष भी, यदि स्त्री न हो? स्त्री का स्त्रीत्व जैसे पुरुष के होने ही से सार्थक है उसी प्रकार पुरुष का पुरुषत्व भी। इस प्रकार प्रकृति-पुरुष की भाँति नर-

नारी दैवी विधान से एकीभूत होते हैं। उनके एकीभूत होने में यदि रत्ती भर की भी कमी रहती है तो या तो पुरुष का पौरुष कम हो या स्त्री का स्त्रीत्व?

नीलू ने हँस कर कहा—और यदि उनके एकीभूत होने में मानों कमी रह जाय तो ?

"आह नीलू ! तुम जानती हो आँधी का प्रवाह जिस ओर बहता है, उसके ऊपर की वायु का प्रवाह ठीक उसकी विपरीत दशा में होता है। गति का विरोध ही प्रगति उत्पन्न करता है। तुमने जिस विरोध और जड़ता को अनेकीकरण समझा है, वह कितना असत्य है ?

"असत्य ?"—नीलू ने होठ सिकोड़ कर कहा।

सहज शान्त स्वर मे महेन्द्र ने कहा—तुम इस विषय में अपने व्यक्तिगत उदाहरण से आगे नहीं बढ़ सकतीं नीलू, तुम नहीं समझतीं कि हम दोनों जितना ही परस्पर दूर हैं उतने ही अशान्त हैं। नैसर्गिक एकीकरण की हमें कितनी जरूरत है यह तुम इसी से समझ लो।

"परन्तु हम दोनों जो परस्पर दूर हैं, सो क्या कृत्रिम है ? आप यह कहना चाहते हैं ?"

"निस्सन्देह।"

"झूठ, बिलकुल झूठ।"—नीलू ने क्रोध में आकर कहा।

नीलू का इस अवसर पर क्रोध ही उसकी पराजय थी। इसी से महेन्द्र ने हँस कर कहा—कहो फिर, तुम रात-रात भर जागती क्यों हो ? जिस पति को अपनाया नहीं उसकी प्रतीक्षा करती क्यों हो ? आक्रान्त होने में तुम्हें अपने आत्मसम्मान का भङ्ग दीखता है तो तुम फिर आक्रान्त होने की अभिलाषिणी क्यों हो ?

"यह सब किसने कहा ?"

नीलू का कण्ठ स्वर बदल गया और उसकी आँखों की पुतलियाँ चञ्चल हो गईं। उसके होंठ फड़कने लगे। महेन्द्र हँसते हुए कुर्सी से उठे। उन्होंने धीरे से कहा—तुम्हारी आँखों और होठों ने.......और उन्होंने अपने हाथ से दो प्याला चाय बनाई। एक प्याला नीलू की ओर बढ़ाते हुए वे बोले—पीओ नीलू, मेरे हाथ का एक प्याला! पर बिनती करता हूँ धन्यवाद मत देना।

पराजित होकर व्यंग का प्रहार असह्य होता है। पर नीलू ने उसे सहन करने के लिये चुपचाप प्याला पीना शुरु कर दिया, उसका मुँह बहुत भारी हो गया।

महेंद्र ने प्रेम-पूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया। उसे दबाते हुए वे बोले—नीलू प्रिये, अकारण हृदय पर बोझ लादे फिरने से क्या लाभ है?

नीलू संयत न रह सकी, उसका हृदय-दारिद्र्य प्रकट हो गया, उसे छिपाने में असमर्थ हो वह टप-टप आँसू बहाने लगी। मन और क्रोध ने उसे अविभूत कर लिया। उसने धीरे से अपना हाथ खींच कर कहा—क्या आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेंगे?

"प्रार्थना की क्या बात है नीलू, जो कहना हो कहो।"

"मैं बाबू जी के पास जाना चाहती हूँ, आप आज्ञा दे दीजिए।"

महेन्द्र आवाक् हो गये। ठीक विजय के अवसर पर ही पराजय कैसी? उन्होंने आवाक् हो कर कहा—यह क्यों नीलू? क्या बाबू जी ने लिखा है?

"नहीं, मैं ही उन्हें लिखना चाहती हूँ। लिख देती, पर फिर सोचा आपकी आज्ञा ले लेना जरूरी है।"

"मेरी आज्ञा!"

जी हाँ, आप पति हैं, आपकी आज्ञा के बिना मुझे कुछ भी करने का अधिकार नहीं है।"

महेंद्र चुप रहे। पत्नी का व्यंग सुनकर उन्हें मर्मान्तक पीड़ा हुई। उन्होंने कहा—यह तुम्हारा सरासर अन्याय है नीलू! मैंने क्या कभी तुम्हारी इच्छा के विपरीत कुछ किया है?

"क्या आप समझते हैं कि स्त्रियों की भी कोई इच्छा होती है, उनकी कोई आत्मा है।"—नीलू ने उत्तेजित होकर कहा—उसका मुँह लाल हो गया।

महेंद्र ने कातर होकर कहा—मैं विश्वास करता हूँ नीलू, स्त्रियों की भी पुरुषों के समान इच्छा है, रुचि है, विचार हैं और उन्हें उन्हीं की स्वाधीनता से उपभोग करने का पूर्ण अधिकार है।

नीलू ने देखा—कातर होकर भी महेंद्र का स्वर स्थिर और गम्भीर है; परंतु उसका हृदय जैसे उमड़ा पड़ता था। उसने कहा–ठीक है, इसी से आप स्त्रियों को घर के तबेले में बाँध कर, अपने विज्ञान और विद्या की उपासना करते हैं। स्त्रियों को न सङ्गी चाहिये न साथी, न उन्हें मनोरञ्जन की आवश्यकता है। यदि है भी तो घर की चहारदीवारी उनके मनोरञ्जन के लिये काफी है। है। कहिये तो आप जो तमाम दिन कॉलेज में और तमाम रात अपनी लैबोरेटरी मे व्यतीत करते हैं! आपने कभी सोचा है कि मैं अपना समय कैसे काटती हूँ? आप ही ने न मुझे मेरे माता-पिता, मित्रों से दूर कर दिया है, सो इसीलिये? महेंद्र निरुत्तर हुए। वे जो कहना चाहते थे न कह सके, वे तो उससे अलिप्त रहने की चेष्टा ही में दूर-दूर रहते थे। फिर भी उन्होंने कहा—नीलू तुम्हारा अभियोग मिथ्या नहीं है—परंतु सोच कर देखो तो। वे आगे कुछ न कह सके।

नीलू ने रोष भरे स्वर में कहा—आप साफ-साफ कहिये।

महेन्द्र ने लड़खड़ाती जबान में कहा—सुनो तब साफ-साफ नीलू ! तुम्हें याद है कि मैं सात समुन्दर पार एक अतर्क आकर्षण से अति व्यथित होकर जब तुम्हारे घर पहुँचा और अपनी चिर-अभिलषित नीलू को एकान्त में पाया तब क्या-क्या उमङ्ग मेरे हृदय में थी, वह सब तुमने अपरचित कह कर स्वागत करने में समाप्त कर दी। आज तक तुम्हारी आत्मा से मेरा विद्रोह है। मैं भी दुर्बल-हृदय मनुष्य हूँ नीलू। मैं तुम्हें भुला नहीं सकता। जैसा कि मैंने निश्चय किया है कि मैं तुम्हें आक्रान्त न करूँगा। मैं अपने को तुमसे दूर रखने के लिये हठपूर्वक दूसरे कामों में लगा रहता हूँ। मेरा जीवन एक निर्जीव मशीन के समान है। मैं उस सूखे मेघ के समान हूँ जो वायु के थपेड़ों पर घूमता रहता है, पर बरस नहीं सकता। मैं उस दिन की प्रतिज्ञा में हूँ नीलू, जब तुम मुझे उपलब्ध होगी और मेरा आत्मार्पण स्वीकार करोगी।

नीलू ने समझ लिया। आत्म-सम्मान तो यहाँ भी है। ये आत्मार्पण करें और मैं उसे ठुकराऊँ यह भी तो अनुचित है! पर स्त्रियाँ हारने पर कभी हार नहीं मानती हैं। नीलू ने एक बूँद आँसू गिरा कर कहा—आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

"प्रार्थना की क्या बात है नीलू! तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो अम्मा जी से पूछ लो, परंतु जाओगी कैसे? साथ कौन जायगा!"

"क्यों क्या अकेले मैं न जा सकूँगी? ओह! समझी स्त्री जो ठहरी, स्त्री अकेली जायगी कैसे, यही तो।"

"तुम्हारी जैसी स्त्री विश्व भर में अकेली जा सकती है। जो तुम सोचती हो वह बात नहीं है, पर मैं तुम्हें अकेली तो नहीं भेजूँगा।

"रामधन दादा को भेज दीजिये। एक दिन उनके न रहने से आपको ज्यादा कष्ट न होगा।"

"नहीं नील्लू। मैं खुद ही चलूंगा, अगला इतवार ठीक रहेगा, मैं आज छुट्टी का बन्दोवस्त कर लूँगा। तुम अम्मा से पूछ रखना।"

यद्यपि नील्लू ने अनुरोध ही से नहीं प्रत्युत ठोकर मार कर यह गमन-आज्ञा प्राप्त की थी, फिर भी उसके प्राप्त होने से जैसे वह बुझ सी गई। वह जैसे पहाड़ से गिरकर चोट खा गई हो। वह कुछ बोली नहीं! चुपचाप बैठी रही। महेन्द्र एक ठण्ढी साँस खींच कॉलेज चले गये।

———

१७

रेल में तमाम रात, दोनों यात्रियों ने चुपचाप काट दी।

दोनों तमाम डब्बे में रास्ते भर अकेले रहे, जैसे दो प्यासे आदमी नदी के किनारे-किनारे लम्बी यात्रा करें, परन्तु व्रतभङ्ग के भय से जल की बूंद पेट में न उतार सकें। दोनों के हृदय पर बोझा लदा था। दोनों चाह रहे थे कि कोई तीसरी शक्ति उन्हें परस्पर टकरा दे कि वे चूर-चूर हो जायँ। महेन्द्र ने बहुत खोज-ढूंढ़ करने पर दो-चार वाक्य इस तमाम रात की यात्रा में कहे और नीलू ने अति संक्षिप्त उत्तर दिये। यात्रा समाप्त हुई, वह रात्रि भी—उन सब रात्रियों के समान, जो गिनती में बहुत थीं और जिनमें दोनों दम्पति अलग-अलग सोये थे, यद्यपि कमरा एकही था, धर्म से वे पति-पत्नी थे, और उनके बीच में कोई सांसारिक बाधा भी न थी।

राय साहब ने बेटी-दामाद को देखा तो उछल पड़े। वे विक्षिप्त की तरह चिल्लाते हुए भागे और दोनों को छाती से लगाया। इसके बाद महेन्द्र का हाथ पकड़ वे बैठक में जाकर न जाने क्या-क्या कहने लगे।

परन्तु गृहिणी ने जब बेटी का सूखा हुआ मुँह और गड्ढे में धँसी आँखे देखीं और उनके चारों ओर काला मण्डल देखा तो धक से रह गई। नीलू ने माँ को देख कर हँसना चाहा, पर हँस न सकी। दोनों नारियों ने उस समय मूक रुदन कर के घर को बहा दिया।

किसी अशुभ बात को सुनने के भय से गृहिणी ने बेटी से

कुछ प्रश्न नहीं किया। महेन्द्र से भी नहीं। वे जब भीतर आये और प्रणाम कर नीची आँखे किये खड़े हो गये तो गृहिणी ने साहस पूर्वक उनका कुशल-मंगल पूछा, उनकी माता का हाल-चाल पूछा, पर महेन्द्र को मालूम हुआ कि जैसे यह सब बाहरी शिष्टाचार है ! बेटी को सुखी न रख सकने वाले दामाद के प्रति, मालकिन की उपेक्षा के भाव महेन्द्र की आँखों से छिपे न रहे। वे झटपट बाहर बैठक में आकर रायसाहब की गप्पों में डूब गये। राय साहब को जैसे दुनिया के किसी बखेड़े से कोई काम ही न था। वे मस्त हो, दुनिया भरकी बातें छेड़ रहे थे। और महेन्द्र अनमने हो उनका जबाब दे रहे थे। कमलिनी को महेन्द्र इस द्विविधा में भी न भूल सके थे। इसके लिये वे बहुत सी चीजें लाये थे। उन सब चीजों को बारम्बार गिन सजवाँ कर कमलिनी बहुत ही व्यस्त हो उठी थी। उसे इस बात का भी खेद था कि उसकी चीजों का कोई भी उत्साह से स्वागत नहीं कर रहा है। नीलू और माँ दोनों ही उदासीन हैं। महराजिन केवल बहुत खुश है, और कमलिनी उसी को कई बार अपनी चीजें दिखा चुकी है।

महेन्द्र के निकट आने में उसे कुछ संकोच भी है ! फिर भी वह चाहती है कि वह बारम्बार जीजा जी के पास जाय। उनसे बातें करे। महेन्द्र को इस बार सब सूना-सूना सा लग रहा है। वे रायसाहब की अनर्गल फिलासफी की बातों से ऊब रहे थे, भोजन करने के बाद जब वे पलँग पर लेटे, तब कमलिनी पान का डब्बा लिए सकुचाते-सकुचाते आई।

महेन्द्र ने कहा—पहचानती हो कमल, हमें ?

"जी !"

"कौन हैं हम, कहो तो ?"

"जीजा जी !"

बहुत मधुर और स्निग्ध-कण्ठ से कमलिनी ने उन्हें जीजा जी सम्बोधन किया। उस समय न जाने क्यों उनके मन में एक ज्वार आया, उन्होंने आगे हाथ बढ़ा कर उसे अपने पास खींच कर कहा—"कमल, हम तुम्हारे लिए बहुत-सी चीजें लाये हैं, वे सब तुम्हें पसन्द तो हैं ?"

"हाँ।" उसने संक्षेप में कहा और समर्थन में सिर भी हिला दिया। कुछ देर महेन्द्र चुपचाप बालिका को देखते रहे। वे सोचने लगे—क्या इस बालिका के अति निकट आने के लिए भी मुझे कुछ करना होगा ? उन्होंने कहा—"कमल, कभी तुम हमें याद करती थीं ?"

"करती थी।"—कमलिनी न लाज से हँसते हुए कहा।

"किन्हें करती थी, मुझे या जीजी को ?"

"दोनों को।"

"सबसे ज्यादा किसको ? सच कहना।"

बालिका ने एक स्वच्छ कटाक्षपात किया और फर कहा—आपको।

"झूठी"—महेंद्र ने हँस कर कहा—"क्या जीजी को नहीं करती थी ? अच्छा कहो, मुझे ज्यादा क्यों ? क्या इसलिए कि मैं तुम्हारे लिए बहुत-सी चीजें लाता हूँ ?"

"नहीं—बालिका ने तत्काल सिर हिलाकर अस्वीकार किया।

"तब ! किसलिए ?"

"आप जीजा जी हैं ?"

"वे भी तो जीजी हैं ?"

"हैं तो।"

"फिर मुझे अधिक क्यों ?"

बालिका अधिक झंझट में नहीं फँसना चाहती थी, वह हाथ छुड़ा कर भाग गई।

महेंद्र सोचने लगे, विद्रोह का केन्द्र सिर्फ वही है जो सहयोग का केन्द्र है। बिजली के तार सारे घर में फैले हैं। कहीं कुछ गड़बड़ है, जिससे घर भर में अंधकार है; पर गड़बड़ जहाँ है वह केन्द्र है। वे बड़ी देर तक चुपचाप पड़े सोचते रहे।

दूसरी मुलाकात में कमलिनी ने महेंद्र से खूब गपशप की। उस सरल बालिका के उन्मुक्त हृदय के उल्लास ने, उन्हें बहुत सुखी किया। उन्हें ऐसा आभास हुआ कि जैसे अभी भी वे एक बारगी ही उस घर में अपरिचित नहीं हैं। आह! क्या नीलू ऐसे ही उल्लास और सरलता से बातें करेगी? कब, कब? महेंद्र ने जोर से हृदय दबा लिया।

उसी रात महेंद्र चले गये। छुट्टी नहीं थी। जाते समय एक बार नीलू से मुलाकात करने गये। उन्हें देख नीलू उदास भाव से खड़ी हो गई। महेंद्र ने चुपके से अपना पर्स तकिए के नीचे रखते हुए कहा—जाता हूँ नीलू।

नीलू के मुँह से आवाज नहीं निकली। उसकी आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे।

महेंद्र ने दबे स्वर से कहा—दुःख की क्या बात है, जब लिखोगी मैं तुम्हें ले जाऊँगा।

नीलू ने मर्म भेदी स्वर में कहा—मेरे लिखने की आप प्रतीक्षा करेंगे?

महेंद्र नीलू का अभिप्राय नहीं समझे; पर नीलू के कण्ठ-स्वर से वे पीड़ित हुए, उन्होंने भर्राए स्वर में कहा—करूंगा नीलू।

वे जाने लगे तो नीलू ने आसू पोंछ पर्स हाथ में लेकर कहा—इसे ले जाइए, यहाँ क्या जरूरत है।

महेंद्र क्षण भर पत्नी की ओर देख कर बोले—नीलू, तुम मेरे सभी रास्ते बन्द किया चाहती हो, अपनी ही चीज पर इतना सङ्कोच है, मैं तुमसे अनुरोध नहीं किया चाहता, एक बार तुम उसकी अवज्ञा कर चुकी हो; परंतु यदि कभी लिखोगी तो मेरे हर्ष का पारावार न रहेगा।

वे उत्तर की प्रतीक्षा न कर सके, अपने दुःख और आँसुओं को वे नीलू को दिखाना न चाहते थे, वे चले गये। नीलू काठ की भाँति वैसी ही खड़ी रह गई।

———

१८

गृहिणी ने महेंद्र से एक शब्द भी शिकायत का नहीं कहा। उनके जाने के दूसरे दिन वे बड़े तड़के बेटी के कमरे में आ गईं। देखा नीलू अभी सो रही है। उसके पलँग पर बैठ कर उन्होंने उसके बदन पर हाथ फेरना शुरू किया। नीलू जाग कर उठ बैठी। माँ को पास बैठे देख वह जरा चकराई, पर माता ने उसे खींच कर छाती में छिपा लिया। नीलू ने देखा—माँ उसे छाती में छिपा कर रो रही है।

नीलू ने कहा—रोती क्यों हो माँ?

गृहिणी ने उसे और भी निकट लाकर कहा—मेरी बिट्टो, तुम्हें रत्ती-रत्ती सब बातें मुझे बतानी होंगी।

"कौन-कौन-सी बातें अम्मा?"

"सारी बातें। अगर तुम अपने आपको अम्मा से छिपाओगी बेटी, तो फिर तुम्हारे दुःख का अन्त क्या होगा?"

नीलू चुप रही। गृहिणी ने फिर पूछा—अम्मा को खत क्यों नहीं लिखा था बेटी, दो महीने में एक भी खत नहीं।

"बाबू जी को खत लिखे थे उसी में सब बातें थीं"—नीलू ने भरे स्वर में कहा।

"बाबू जी को लिखे थे, अम्मा को क्यों नहीं लिखे बेटी, अम्मा से लड़ कर गई थी इसीसे? दो महीने में भी तुम्हारा गुस्सा दूर नहीं हुआ? तुमने क्या यह सोचा ही नहीं कि मैंने जो तुमसे कहा था वह सब तुम्हारे ही हित के लिए था?"

"अम्मा, मैं नाराज नहीं थी ?"--नीलू ने रुआँसी होकर कहा।

"सास तुम्हें पसंद आई नीलू ?"—गृहिणी ने बात बदल कर कहा।

"वे तो देवी-रूप हैं अम्मा।"

"और पति ?"

नीलू चुप हो गई। गृहिणी ने कहा—शर्माना नहीं होगा बेटी, अम्मा से सब कुछ कहना होगा।

नीलू ने कंपित स्वर से कहा—वे भी देवता हैं।

"तब फिर तुम अभी तक दो क्यों हो ?

"नहीं अम्मा।"

"पगली बेटी, अम्मा को ठगना चाहती है, तुम्हारी आँखों में सौभाग्य की रेखा कहाँ है ? तुम जैसी गई थी—वैसी ही आई हो बेटी, पति से तुम दूर, बहुत दूर रही हो। मैंने चाहा था—मैं महेंद्र से इस संबन्ध में बात कहूँ; पर फिर सोचा—न जाने वे कहाँ तक अपराधी हैं। इसीसे मैंने पहिले तुम्हीं से पूछा है। कहो, उनका कुछ दोष पाया तुमने ?"

"नहीं।"

"वे क्या तुमको पसन्द नहीं हैं ?"

"वे देवता हैं।"

"तुमको उन्होंने पसन्द नहीं किया, तिरस्कार किया ?"

"मेरे लिए मनुष्य जो कर सकता है, वही उन्होने सदा किया।"

"नीलू !"

माँ के सम्बोधन में कठोरता का संपुट पाकर नीलू आँखें उठा कर माँ की ओर देखने लगी।

गृहिणी ने कहा—फिर ?

नीलू घबरा गई। वह क्या जवाब दे।

गृहिणी ने कहा—तुम्हें सब कहना होगा।

"क्या माँ ?"

"तुम्हारे और तुम्हारे पति के बीच में कौन है ?"

नीलू एकदम चीख उठी—माँ!

गृहिणी ने छाती से दूर कर के कठोर दृष्टि से बेटी को देखा। नीलू को मालूम हुआ जैसे माँ की दृष्टि उसे भस्म कर देगी।

नीलू ने आँसू भर कर कहा—माँ, मेरा ऐसा अपमान मत करो, मैं सब ओर से हार कर तुम्हारे शरण आई हूँ। वह माँ की गोद में गिर कर फफक-फफक कर रोने लगी।

माता ने पुत्री को अच्छी तरह रो लेने दिया। उसके मुख पर सावन भादों की घटाएँ छा रही थीं।

नीलू ने आँख उठाकर स्थिर दृष्टि से माँ को देखा और कहा—माँ, तुम्हारा सब संदेह वृथा है। उस दिन उन्होंने भी यही पूछा था। बाबूजी ने मुझे महा ज्ञान के नेत्र दिये हैं, जो क्या इसीलिये माँ, तुम मुझे इतना छोटी समझती हो ?

गृहिणी ने अपेक्षाकृत शांत स्वर में कहा—बेटी, तुझे ज्ञान तो अवश्य ही प्राप्त हुआ है। पर ज्ञान की दृष्टि से सभी कुछ प्रत्यक्ष नहीं दीख जाता। महाज्ञान कभी कभी मनुष्य को मूढ़ भी बना देता है। ज्ञान को सार्थक होने के लिये अनुभूति की बड़ी जरूरत है।

नीलू ने इस बार माता से बहस नहीं की। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे सचमुच ही उसे उस ज्ञान ने अंधा कर दिया है, जिस पर उसे इतना घमण्ड है। वह चुपचाप एक ओर को दृष्टि

लगाये कुछ सोचती रही। गृहिणी ने फिर कहा—कह दे बेटी, सब कुछ कह दे।

"क्या कहूँ माँ ?"

"तुम दोनों पति पत्नी की भाँति एक नहीं हुए न ?"

"न"

"किसके दोष से ?"

"मेरे।"

"तुममें दोष क्या है बेटी ?"

"घमण्ड।"

"बस ?"

"मुझे तो इतना ही मालूम है।"

"तुमने उनका अपमान किया था ?"

"बहुत बार।"

"उन्होंने ?"

"अपमान सहन किया, पर उपेक्षा की।"

"ठीक कह सकती हो ? उपेक्षा की।"

नीलू विचलित हो गई। उसने कहा—ठीक ठीक नहीं कह सकती माँ।

"तुमने अपमान क्यों किया था बेटी, उन्होंने कुछ अनुचित व्यवहार किया था ?"

"नहीं।"

"क्या वे तुझसे प्रेम नहीं करते ?"

नीलू चुप रही। गृहिणी ने कहा—बताना होगा बेटी!

"बहुत करते हैं।"!

"तू उनसे प्रेम करती है ?"

नीलू ने कहना चाहा—नहीं; पर उसके होंठ काँप कर रह गये। 'नहीं' उसके मुँह से नहीं निकला।

गृहणी ने कहा—वे तेरे पति हैं बेटी।

"मैं नहीं जानती माँ वे क्या हैं? मुझे तो सिर्फ इतना ही मालूम है कि उनका असाध्य अधिकार मेरे शरीर पर हो गया है। मैंने कभी स्वप्न में नहीं सोचा था कि ऐसा होगा। और जब जैसा कि तुमने उन्हें मुझपर लाद दिया है, वे मेरी आत्मा को भी अपना लेना चाहते हैं। माँ, क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं कि मैं अपने जीवन-संगी को पसन्द कर सकूँ?"

गृहणी ने घबरा कर संक्षेप में कहा—तुझे क्या वे पसन्द नहीं हैं?

"पसन्द होने न होने से क्या होगा माँ, तुमने जिस बंधन में हम दोनों को बाँध दिया है, उससे क्या पसन्द न होने पर हम मुक्त हो सकते हैं?"

"तैने ये सब बातें उनसे कही थीं क्या?"

"कही थीं।"

"उन्होंने क्या कहा?"

इसके उत्तर में नीलू का हृदय हाहाकार कर उठा। उसका रोम रोम चिल्ला कर कहने लगा—उन्होंने मुझे त्याग दिया, और यह असह्य है; पर उसने धीरे से कहा—कहा कुछ नहीं। मैंने देखा कि वहाँ मेरी आवश्यकता नहीं है, सो मैं यहाँ चली आई। वे कृपा कर मुझे पहुँचा गए।

गृहणी चुपचाप सोचती रही। नीलू भी बोली नहीं। पुत्री की भूल माँ ने समझ ली थी और नीलू भी जैसे रास्ता नहीं पा रही थी। गृहणी ने एक ठण्डी साँस ली और कहा—उठो बेटी, हाथ-मुँह धो, जा बाबूजी को प्रणाम कर आ।

गृहणी चली गई। नीलू मिट्टी की भाँति पड़ी रह गई।

———

१६

वही घर था जहाँ सारा जीवन बीता था। पर नीलू को जैसे सारा संसार पराया हो रहा था। माँ ने चुप्पी साधी थी। पुत्री के दुःख से वह दुःखी थी, पर दबङ्ग पुत्री पर वह अनुशासन नहीं कर सकती थी। रायसाहब से एकाध बार कहा था; पर उन्होंने इस झगड़े में ज्यादा दिलचस्पी नहीं दिखाई। नीलू को पाकर वे बहुत खुश थे। प्रतिदिन वे खूब सुबह उठ कर नीलू को साथ ले खेतों पर चले चाते थे। वे दोनों पिता पुत्री न थे, दोनों अभिन्न मित्र थे। दोनों समय पिता पुत्री दुनिया भर की बातें करते, घूमने जाते थे। रायसाहब निर्द्वन्द थे। न किसी के लेन में, न देन में, सब चिंताओं से मुक्त। दो मास पहिले नीलू भी ऐसी ही मुक्त थी, जीवन और उल्लास की मूर्ति थी। वह पिता के साथ प्रत्येक विषय में बहस करती— तर्क शैली उसकी पैनी और तीखी थी। रायसाहब जब हार जाते थे, तब ही-ही करके हँस देते थे। नीलू की आँखों में विजय-गर्व झलक आता था; पर आज सब कुछ बदला हुआ है। दो महिने बाद नीलू को पाकर रायसाहब को जैसे बड़ा सहारा मिल गया हो। नीलू उनसे अब बहस नहीं करती, सिर्फ उनके प्रश्नों का उत्तर देती है। वह उनके साथ दौड़ती नहीं, घिसटती है। नीलू को आये २० दिन हो गये हैं। विनय उसे देखने नहीं आया। विनय के विषय में नीलू रोज सोचती है। उसके न आने का कारण भी जानती है। वह सोचती है, विनय को आना चाहिये। एक दिन उसने घूमने जाते समय रायसाहब से कहा—बाबूजी विनय तो यहीं हैं न, मुझे इतने दिन आये हुए, वे मुझसे मिलने नहीं आये?

रायसाहब ने उत्साह से कहा—बेशक, यह उसका अन्याय है, आज मैं उसे बुलाकर कैफियत तलब करूँगा।

"वे हैं तो यहीं बाबूजी ?"

"यहीं है, एम० ए० फाइनल करके घर में बैठा है।"

"चलिये बाबूजी, उनके घर चल कर कैफियत तलब की जाय।"

"हाँ, कैफियत तलब करना बहुत जरूरी है—चलो फिर चलें।"

"क्या इस बीच में वे इधर कभी आये नहीं ?"

"याद नहीं आता, शायद नहीं आये। एक बार हाँ, ठीक है, एक बार आये थे—एक परिचय पत्र उन्हें चाहिये था।"

विनय अपने बरामदे में बैठा ज्यामिति के किसी कठिन सवाल को हल कर रहा था। रायसाहब और नीलू को देख कर विस्मित हुआ, फिर सङ्कोच सहित उठ कर उसने उनका स्वागत किया। एक नजर नीलू पर डाल कर नीची निगाह कर ली। फिर कहा—अच्छी तो रही नीलू ?

"तुम्हें इसकी बड़ी फिक्र है विनय भैया!"—नीलू ने सूखे होठों पर मुस्कान लाकर कहा।

विनय झेंप गया, उसने हँस कर रायसाहब से कहा—चलिये, भीतर नीलू को अम्माँ कई बार याद कर चुकी हैं।

"मैं जाती हूँ अम्मा के पास, बाबूजी, आप तब तक विनय के साथ गप्पें लड़ाइये।"

"पर नीलू, तुम कहीं, गप्पों में ही दिन खतम न कर देना।

नीलू हँसी और उछलती हिरणी की भाँति भीतर चली गई। आज एक क्षण को उसमें जैसे नवजीवन आ गया।

लौटती बार नीलू ने विनय को चाय के लिये निमन्त्रित किया।

कहा—अम्माँ से कह आई हूँ, सब को आना होगा। तुम इनकार नहीं कर सकते विनय।

"अच्छी बात है, आऊँगा नीलू; पर बाबू जी को कुछ जलपान तो कर लेने दो।"

"अभी नहीं फिर कभी।"—नीलू ने रायसाहब को खींच कर खड़ा किया और दोनों चल दिये।

विनय बड़ी देर तक निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा। उसे उस दिन का अपमान याद था। अब उसने सोचा—नीलू जैसे बिल-कुल बदल गई है। उसका सूखा चेहरा और शून्य दृष्टि का ध्यान कर वह चिंतामग्न हो गया।

सन्ध्या को नीलू ने बड़ी तत्परता से विनय की आव-भगत की। चाय और नाश्ते का सब सरजाम उसने अपने हाथों किया, गृहिणी ने यद्यपि इसमें बाधा न दी फिर भी उसे विनय का आना पसन्द न था। यद्यपि नीलू की स्वच्छ हृदयता पर उसे विश्वास था फिर भी विनय की तरफ से वह कुछ उद्विग्न थी। विनय ने आकर जब उन्हें चाची कह कर प्रणाम किया तो वे बड़ी कठिनाई से उसे आशीर्वाद दे सकीं। विनय के परिवार की स्त्रियों की गृहिणी ने खातिदारी की थी; परंतु उसमें दिखावटी शिष्टाचार ही अधिक था।

यह सब नीलू की दृष्टि से छिपा न था। इसी से वह अचानक दौड़-धूप कर रही थी फिर भी उसे सब त्रुटि ही त्रुटि दीखती थी। चाय पीने के बाद, हठात् नीलू ने विनय से जरा नदी की ओर घूम आने का प्रस्ताव किया। विमय ने घबरा कर कहा—इससे तो अच्छा यही है कि हम लोग मिलकर किसी विषय पर चाचाजी से तर्क करके उन्हें पछाड़ दें।

रायसाहब जोर से ही-ही करके हँस दिये। उन्होंने पैतरा

बदल कर कहा—"मैं तैयार हूँ, मगर याद रखना, आखिर में तुम्हें कायल होना पड़ेगा"; पर नीलू एक दम उठ खड़ी हुई। उसने कहा—"नदी से लौटने पर बाबूजी से भी एक डिबेट हो जायगा।" विवश होकर विनय को उठना पड़ा।

उज्ज्वल सन्ध्या काल था। और चाँदी के समान दूर तक रेत फैल रही थी। क्षीणकाय नदी बीच में पेच खाती बह रही थी। नीलू बढ़ी जा रही थी। उसके मन में तूफान-सा उठ रहा था। उसे सब कुछ अस्वाभाविक, अशुभ, एक बोझ-सा प्रतीत हो रहा था। वह सोच रही थी कि जैसे वह डाल से टूटे पत्ते की भाँति हवा उड़ी जा रही है।

दोनों चुप थे। विनय ने कहा—नीलू किस चिंता में मग्न हो ?

"कौन, मैं ?"

"हाँ, तुम।"

वह धम से रेती में बैठ गया। फिर उसने कहा—बैठो नीलू, कहो, बात क्या है ?

"कैसी बात ?"

"तुम तो जैसे मर चुकी हो ?"

नीलू सफेद हँस हँसी कर बोली—गाली क्यों देते हो विनय, मैं यह जीती-जागती बैठी हूँ।

विनय ने हँसी में योग न देकर करुण स्वर से कहा—तुम वह आनन्द विहारिणी नीलू कहाँ हो ? उज्ज्वल आलोक की ज्वाला सी तुम आज बुझी हुई राख-सी हो गई हो। नीलू तुम्हें कुछ ऐसा कष्ट है जिसमें मैं मदद कर सकता हूँ ?

"मुझे कुछ कष्ट नहीं है।"

"तो तुम निश्चय वह नीलू नहीं हो।"

"तब कौन-सी हूँ ?"

"मुझसे सर्वथा अपरिचित, मैं तुम्हें नहीं जानता।"

नीलू सोचने लगी। और एक आदमी को अपरिचित कहा था, सो आज चिरपरिचित मुझे अपरिचित कहने लगे। परन्तु उसने देखा सचमुच आज वह बदल गई है। बहुत दिन का पुराना रोगी जब चिर-आकांक्षित भोजन को खाता है तो उसे उसमें वैसा स्वाद नहीं आता। नीलू का वही हाल हो रहा था। फिर भी उसने हँस कर कहा—मैं आपको अपना परिचय देने का सामान प्राप्त किया चाहती हूँ। महाशय, मैं नीलू उर्फ नीलम, मैं····

विनय ने करुणापूर्वक कहा—नीलू इस तरह तुम विनय को भुलावा न दे सकोगी ? प्रोफेसर साहब से क्या तुम्हारी बनी नहीं ?

यह क्या बात! जो कहता है एक ही बात ? जैसे दो मास के सुसराल-वास का इतिहास उसके चेहरे पर लिखा हो। उसने अनमनी होकर कहा—यह बात तो तुम उन्हीं से पूछो विनय। परन्तु मेरी समझ में इस विषय से तुम्हारा कुछ सम्बन्ध भी नहीं है।

"मुझे क्षमा करो नीलू, निस्सन्देह यह तुम्हारा निजी मामला है, पर मैं तुम्हें इतना गैर नहीं समझता, तुम्हें दुखी देख कर ही मैंने यह प्रश्न किया है।"

"मैं दुःखी कहाँ हूँ ?"

"तुम यदि मुझे धोखा नहीं दे रही हो तो अपने को जरूर धोखा दे रही हो नीलू! तुम्हें मालूम है कि तुम्हारे जाने के बाद मैं चाची से एक बार भी नहीं मिला। तुम्हारे आने पर भी तुमसे मिलने नहीं आया। क्यों, सो तुम जानती हो। उस

दिन चाची ने मेरे हृदय पर चोट की थी। आज भी उनकी नजर अच्छी नहीं थी। तुम उसीका बदला चुकाने मेरे साथ चली आई हो। पर नीलू, भूल तुम्हारी है, चाची ठीक कहती है।"

मेरी भूल क्या है !"

"तुम्हें मेरे साथ इस प्रकार उस दिन घूमने आना ठीक न था। आज भी ठीक नहीं हुआ। और वे पत्र ? नाराज मत हो। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे कॉलेज के सहपाठियों के थे। मैं तुम्हारे उज्ज्वल चरित्र को जानता हूँ। फिर भी नीलू चाची का उन्हें देखना और तुम्हें उनके लिए मलामत देना उचित था।"

"उसी प्रकार, जिस प्रकार किसी आदमी के साथ मेरा ब्याह कर देना, उसके साथ भेज देना और ?...."

नीलू आगे नहीं बोली। उसका श्वास वेग से बहने लगा। परन्तु विनय ने उसकी परवाह न करके कहा—बेशक।

"बेशक क्या ?"

"तुम्हारी अपेक्षा उन्हीं का चुनाव ज्यादा सङ्गत है। तुमने नई शिक्षा में यही तो सीखा है कि तुम्हें अपने जीवन-सङ्गी को चुनने का अधिकार है। हमारी तुम्हारी इसपर बहुत बहस भी होती रही पर, नीलू जरा कहो तो तुम्हें संसार का कितना ज्ञान है ? तुम किसी अपरिचित आदमी को क्या पहचान सकती हो ? तुमने यूरोप घूमा—वहाँ की हवा खाई—वहाँ की आजादी देखी, पर उस आजादी की दुर्दशा भी देखी ? स्त्रियों की पवित्रता तो वहाँ कोई चीज ही नहीं रह गई। विवाह वहाँ एक बोझ है। पति-पत्नी में जो विश्वास की भावना होनी चाहिए उसका वहाँ नाम-निशान भी नहीं है। प्रत्येक स्त्री को पुरुष से और पुरुष को स्त्री से यह भय लगा रहता है कि जाने कब विच्छेद हो जाय, और कभी वे एक नहीं हो

पाते हैं; उनका सम्बन्ध आत्मिक नहीं होता, सिर्फ शारीरिक होता है। गार्हस्थ्य जीवन और प्रेम जैसे वहाँ भुनस गया है।"

"तुम शायद भारतीय स्त्रियों को गुलामी की उसपर तरजीह दिया चाहते हो?"

"गुलामी तुम किसे कहती हो नीलू, प्रेम जहाँ है, विश्वास जहाँ है, आत्मार्पण जहाँ है, वहाँ गुलामी कहाँ है? फिर भी तुम कुछ बुराइयाँ अवश्य बता सकती हो, परन्तु संसार बुराइयों से कभी शून्य नहीं हो सकता। मैं तो यही समझता हूँ, नीलू कि संसार भर में सबसे गम्भीर दाम्पत्य भारतवर्ष ही में है। जहाँ इस जन्म की विच्छेद की बात तो दूर रही, जन्म-जन्मान्तरों के अविभक्त सम्बन्धों पर विश्वास है।"

नीलू के मन में आई कि वह इसके विरोध में एक करारा जवाब दे, पर उसे सास की उस रात की दिव्य वाणी स्मरण हो आई। वह चुप हो गई। फिर उसने कुछ ठहर कर कहा—परन्तु अपरिचित्त व्यक्ति, जिसका पतित्व पत्नी पर उसके माता-पिता लाद दें उससे प्रेम होना अनिवार्यतः कैसे सम्भव है? प्रेम अनिवार्य नहीं तो पतित्व का बोझा फिर स्त्री की गुलामी ही तो है।

"निस्सन्देह प्रेम अनिवार्य होना ही चाहिए।"

"तुम यह कहना चाहते हो कि जिन स्त्री-पुरुषों में परस्पर पति-पत्नी का सम्बन्ध हो जाय उनमें प्रेम अनिवार्य रूप से होना ही चाहिए?"

"अवश्य!"

"मैं यह नहीं मानती!"

"तुम क्या मानती हो?"

"मैं कहती हूँ जिन स्त्री-पुरुषों में प्रेम हो, वे ही पति पत्नी बनें।"

विनय कुछ हँस कर बोला—मैं जरा खुल कर बात करूँ नीलू?

"करो, भय क्या है।"

"तुम्हारे सम्मुख कुछ भय नहीं है। अच्छा कहो दो व्यक्तियों में जिनमें एक स्त्री है, दूसरा पुरुष, दोनों अपरिचित हैं, उनमें प्रेम कैसे उत्पन्न होगा? कोई जादू तो शायद काम देगा नहीं। दोनों को युवा भी होना चाहिए। समान स्वभाव, समान शिक्षा और समान प्रकृति का भी होना चाहिए।"

"अवश्य।"

"फिर वे दोनों एक दूसरे के स्वभाव, प्रकृति, गुण-दोष को पहिचान लेंगे तभी तो प्रेम होगा?"

"हाँ, तभी होगा।"

"इसमें कितना समय लगेगा नीलू! इतने समय तक अविवाहित स्त्री पुरुष का एक साथ रहना, एक साथ एक दूसरे के प्रति घनिष्ट होना, जो परस्पर के गुण-दोषों के लिए अनिवार्य है, कितना खतरनाक हो सकता है? जानती हो?"

नीलू जैसे विचलित हो गई। उसने कहा—शिक्षित युवक-युवतियाँ उस खतरे से अपनी रक्षा कर सकती हैं।

"कैसे?"

"विवेक और संयम के द्वारा।"

"सुनो नीलू। मैं सिर्फ तुम्हारा सहपाठी ही नहीं, मास्टर भी हूँ। तुम मेरी कुछ इज्जत करती हो?"

"बहुत करती हूँ।"

"नीलू मैं कुछ ऐसी बातें कहना चाहता हूँ जो युवकों को युवतियों से न कहनी चाहिए।"

"मास्टर सब कुछ कह सकता है, वह ज्ञान का दाता है।"

"मैं एक वैज्ञानिक सिद्धान्त की बात कहूँगा।"

"कहो !"

"देखो नीलू, स्त्री-पुरुषों का भिन्न लिङ्गी होना दोनों को परस्पर आकर्षित करता है। उस आकर्षण का केन्द्र वासना है। यह वासना विशुद्ध शारीरिक है। मन या आत्मा से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। शरीर में कुछ ग्रन्थियाँ हैं जिनमें एक प्रकार का रस उत्पन्न होकर रक्त में मिल जाता है। जब उपयुक्त मात्रा में वह रस रक्त में मिल जाता है और उसका प्रभाव मस्तिष्क के एक खास केन्द्र पर पड़ता है, तब भिन्न लिङ्गों के संसर्ग, सहवास या दर्शन ही से स्वस्थ-व्यक्ति में विकार का उदय होता है, उसका प्रतिकार न ज्ञान कर सकता है, न संयम। नीलू पहले प्रेम करके पीछे विवाह करना, यह सिद्धान्त सुनने में ही अच्छा है; पर यह सर्वथा अव्यवहार्य है। यदि इसपर अमल किया जायगा तो जीवन की पवित्रता, सतीत्व, पत्नी होने की योग्यता सब कुछ खतरे में पड़ जायगा। पुरुष भी गिरने से बच नहीं सकता; पर स्त्री की जैसी सारे संसार में सामाजिक स्थिति है, उससे स्त्री का सर्वनाश होने का इस सिद्धान्त से भारी भय है। तुम स्त्री हो, मैं इससे अधिक और कुछ कहूँगा।"

नीलू सुनकर सन्न रह गई। वह कुछ भी बोल न सकी। विनय ने धीरे-धीरे कहना फिर आरम्भ किया। उसने कहा—पाश्चात्य संसार का कौमार्य सन्दिग्ध और अपवित्र हो चुका है। व्यक्तित्व की बात अलग है। सारे यूरोप और अमेरिका मे पुरुष दम्भतापूर्वक यह कह सकता है कि वह किसी भी कुमारी को खरीद सकता है। सिर्फ कीमत चाहिए। भारत में वह दिन अभी दूर है नीलू, उसका तुम भारत में स्वागत करना चाहती हो ?

नीलू अब भी नहीं बोली। वह गम्भीर सोच में पड़ गई।

विनय ने फिर कहा—रहा प्रेम ! प्रेम तुम किसे कहती हो नीलू ? अधिकाधिक त्याग का नाम ही प्रेम है। जिसके लिए तुम जितना त्याग कर सको उतना ही उससे तुम अधिक प्रेम करती हो। कल्पना करो, दो अज्ञात युवक-युवती अकस्मात् अपरिचित अवस्था मे प‌ति-पत्नी बन जाते हैं। दोनों की अनुमति भी इसमें नहीं ली जाती है। फिर भी इसमें कुछ वैज्ञा‌निक और प्राकृतिक बातें हैं जिनका विपर्य हो नहीं सकता। एक तो यह कि दोनों भिन्न लिङ्गी हैं। नैसर्गिक रीति से दोनों अपने में अपूर्ण हैं। दोनों एक दूसरे से मिलकर ही पूर्ण हो सकते हैं। दूसरे मनोविज्ञान कहता है कि भिन्न लिङ्गी के प्रति भिन्न लिङ्गी का आकर्षण ही प्रेम का प्रतिष्ठापक है। प्रेम आप ही उन दोनों में उत्पन्न हो जाता है।

नीलू ने घबरा कर बीच ही में कहा—यदि प्रेम न हो ?

"यह असम्भव है, यदि दोनों रोगी या विकार-ग्रस्त नहीं हैं, तो उसमें ठीक उसी प्रकार प्रेम उदय हो जायगा जैसे दूध मे जामन पड़ने से दूध जम जाता है।"—कुछ रुक कर फिर विनय ने कहा—"मैं तुम्हारा ही उदाहरण लेता हूँ नीलू; क्या तुम प्रोफेसर साहब से प्रेम नहीं करती ? फिर तुम्हारी यह हालत क्यों हुई है ? प्रेम को बलपूर्वक रोकने की चेष्टा मे तुम्हें सफलता नहीं मिलेगी, यह अबाध प्रेम की धारा है, तुम मस्तिष्क के बल पर इसे रोक न सकोगी। यह विषय मस्तिष्क का नहीं है। रक्त की शुद्धता का है। तुम जितना भी जोर लगाओगी, कमजोर होती जाओगी और यह प्रवाह तुम्हें बहा ले जायगा।"

विनय चुप हो गया। बड़ी देर तक कोई नहीं बोला। कुछ देर बाद विनय ने कहा—चलो अब नीलू, घर चलें।

नीलू चुपचाप चल दी। एक शब्द भी बोली नहीं।

——

२०

नीलू को ऐसा मालूम हुआ जैसे उसके सारे शरीर में प्रलय की ज्वाला जल रही है। उसका सोया हुआ नारीत्व जैसे जागकर तांडव नृत्य कर रहा है। वह बिना ही भोजन किये द्वार बन्द कर पलँग पर पड़ रही। वह चली जा रही थी। एक अनिवर्चनीय पीड़ा उसे विकल कर रही थी। उसे आज महेन्द्र की याद आ रही थी। महेन्द्र के लिये वह तड़प रही थी—कब उन्होंने कैसा मृदु व्यवहार किया था, यह सब जैसे वह उसी क्षण अनुभव कर रही थी, उसे वे दुखदाई तमाम रातें याद आ रही थीं, जब वह महेन्द्र के साथ एक कमरे में सोते रहने पर उनसे पृथक रही। वह दोनों हाथों से छाती दबाकर कहती थी—"उन्होंने मुझपर बलात्कार क्यों नहीं किया ?" नीलू बिल्कुल पागल हो गई थी ? आज उसका रोम रोम महेन्द्र का प्यासा था। ओह ! उन्होंने कितना प्यार किया है, कितना सहा है। वह तकिये पर सिर धुन रही थी।

महेन्द्र को उसने पत्र नहीं लिखा था; पर उनके दो पत्र आ चुके थे। एक में सिर्फ दो लाइन थीं, जिसमें सकुशल पहुँच जाने भर की बात थी, दूसरा भी एक पुर्जा भर था, जो कुछ रुपयों के साथ उन्होंने भेजा था। उस समय उन सूखे-सूखे खतों को गुस्से से उसने फेंक दिया था, आज उन्हें खोज-ढूँढ़ कर उन्हें छाती से लगा कर वह रो रही थी, बहुत रात तक उसकी यही हालत रही, वह सो न सकी। उसने महेन्द्र को पत्र लिखने की इच्छा की—वह उठ कर मेज पर बैठ गई। बत्ती जलाई। वह पत्र लिखने और फाड़ने लगी। रात ढलती गई; पर वह पत्र न लिख सकी। अन्त

में नीलू थक कर वहीं सो गई। स्वप्न में उसने देखा—जैसे महेंद्र की गोद में उसका सिर है। और वे झुक कर उसका एक चुम्बन चुराना चाहते हैं। और नीलू हँस कर जैसे उन्हें अवसर नहीं दे रही है। इसी समय उसकी आँख खुली। प्रातःकाल हो रहा था, वह उसे अत्यन्त सुहावना लगा। उसकी आत्मा का बोझ जैसे उतर गया था—एक आनन्द की रेखा उसके हृदय में उदय हुई थी, उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे उसकी अन्तरात्मा ने पवित्रता मे स्नान किया हो। आज उसे पति का परिचय प्राप्त हुआ है। आज उसके हृदय में पति-प्रेम का अङ्कुर फूटा है आज उसमें नारी का जागरण हुआ है।

प्रातःकाल उठकर उसने महेंद्र के दोनों पत्रों को चूम कर सावधानी से बक्स में धर दिया। इसके बाद उसने मेज के नीचे उन कागजों के ढेर को देखा जो उसने रात भर में लिखे और फाड़े थे। आँधी के बाद जैसे दो बूँदे पड़ कर प्रकृति शांत हो जाती है, उसी भाँति वह भी शांत हो गई थी। उसने एक-एक बार सब फटे टुकड़ों को पढ़ा, चूमा, किसी को पढ़ कर वह हँसी, किसी को पढ़ कर दो बूँद आँसू गिराये। बाद में सबको समेट कर उसने छाती से लगा लिया।

इसी बीच उसकी माता ने द्वार खोलने को कहा! माता का शब्द सुन कर उसने द्वार खोल दिया—और वह माँ से लिपट गई। गृहिणी हैरान थी। नीलू ने उसे कितना चूमा, कितने घूँसे मारे और आखिर खींच कर पलंग पर लेट गई।

गृहणी ने बारम्बार कहा—अरी पगली, यह क्या करती है! क्या करती है!

स्वस्थ होने पर नीलू ने कहा—माँ तुम बहुत अच्छी हो।

गृहिणी भूमिका कुछ न समझी। कल शाम विनय का आना और हठात् उसके साथ बेटी का घूमने जाना, उसे अच्छा नहीं लगा था, इसी से वह थोड़ी अनमनी हो रही थी। आज पुत्री के इस हर्षातिरेक से वह विस्मित हो गई। नीलू की आंखों में हास्य की स्निग्ध धारा, होठों में सौभाग्य का रस आज उदय हुआ था। गृहिणी ने उसे पहचाना, फिर वह बेटी की पीठ पर हाथ फेर कर बोली—सौभाग्यवती रहो बेटी, मैं सदा तुम्हें ऐसी ही खुश देखूँ जैसा आज देख रही हूँ।

"तुम मुझे नहीं देख सकती अम्माँ, मैं कहे देती हूँ।"

"क्या बात है बेटी, देख क्यों नहीं सकती ?"

'मैं आज लाहौर जा रही हूँ, आज रात को, समझीं ? देखोगी कहाँ ?' नीलू ने अजब दबंगता से माँ से यह बात कही और एक बार खूब जोर से माँ को झकझोर कर वह तितली की भाँति भाग गई।

———

२१

रायसाहब ने अपने भारी भरकम शरीर को लेबोरेटरी के ठीक द्वार पर ले जाकर देखा—रामधन सावधानी से द्वार पर बैठा है। रामधन रायसाहब को पहचानता था। उसने उन्हें उठकर प्रणाम किया।

रायसाहब ही-ही कर हँस दिये। दो-तीन जमे हुए हाथ उसकी पीठ पर मार कर कहा—खूब तगड़े हो रहे हो रामधन, महेन्द्र भीतर हैं न?

"जी हाँ, क्या मैं उन्हें बुलाऊँ; पर वे बहुत ही ज्यादा काम में फँसे हैं। आप अभी आ रहे हैं क्या?"

"और नहीं तो क्या? बिटिया क्या है भई, मुसीबत है, एक दम सवार हो गई, अभी चलो लाहौर। आना पड़ा। रास्ते भर गर्द गुबार, धूल, मिट्टी। भई, जान घपले में पड़ गई।

"बहूरानी भी आई हैं?"—रामधन ने उत्सुकता से सीढ़ियों की ओर देखते हुए कहा।

तब तक नीलू खट खट करती ऊपर आ गई। आज उसने असाधारण सिंगार किया था। जरी के काम की हल्की धानी साड़ी पर मैच करता जम्पर, वैसी ही सैण्डिल, सुनहरी काम की तितलियाँ साड़ी पर उड़ती सी दीख रही थीं। कानों और कण्ठ के हीरे और अनुराग रञ्जित होठों पर श्री विराजमान थी।

नीलू को देखते ही रामधन ने आगे बढ़ कर प्रणाम किया।

नीलू ने हँस कर कहा—वहीं हैं?

"जी हाँ।"

"बाबूजी, मैंने आप से कहा था न, जरा आप यहीं ठहरें"—और वह बिजली की भाँति लेबोरेटरी में घुस गई।

महेन्द्र एक असाधारण उत्ताप की भट्ठी के निकट खड़े, बड़ा सा काला चश्मा आँखों पर चढ़ाये, फुर्ती से विद्युत-यन्त्रों का परिचालन कर रहे थे। नील्रू की आँखें एकाएक चौंधिया गईं। महेन्द्र को ज्योंही भास हुआ कि कोई भीतर आया है तो उन्होंने बिना देखे कहा—क्या है रामधन, मैं इस वक्त किसी से नहीं मिलूँगा।

नील्रू ने जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप उनके पीछे जा खड़ी हुई। मेज पर रखा एक वैसा ही काला चश्मा उसने आँखों पर चढ़ा लिया, फिर उसने धीरे से कहा—किसी से भी?

प्रोफेसर साहब ने पलट कर देखा—एकाएक आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उन्हें एक शब्द भी कहने का अवसर नहीं मिला। नील्रू ने उनके कण्ठ में बाँहें डाल दीं। भावावेश में उसका अङ्ग शिथिल हो गया। महेन्द्र को अयोचित दान मिला। उन्होंने कसकर पत्नी को छाती से लगा कर अनगिनत चुम्बन अङ्कित कर दिये। दोनों दीर्घकाल तक असाधारण उन्मादावस्था में एकस्थ खड़े रहे। थोड़ा शान्त होने पर महेन्द्र ने धीरे से नील्रू को अलग करके कहा—नील्रू, क्या यह सपना नहीं है?

नील्रू ने फिर धीरे-धीरे दोनों बाँहें उनके गले में डाल कहा—"नहीं प्रियतम"

"तुम कैसे आ गईं अकस्मात्?"—उन्होंने फिर उसे कस लिया।

"मैं रह न सकी, मैं जल कर खाक हो गई। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती, एक क्षण भी नहीं।"

"सच?"—महेन्द्र ने फिर प्यार अङ्कित किया और कहा—"अकेली भाग आई हो?"

"बाबूजी भी हैं।"

"कहाँ"—महेन्द्र कहते हुए भागे। पीछे-पीछे नीलू भी। रायसाहब ने देखते ही चिल्ला कर कहा—देखा भई, पगली लड़की का ढंग, परेशान कर दिया। मगर मैं तुम्हारी लेबोरेटरी जरूर देखूँगा। महेन्द्र ने आकर श्वसुर के चरण छू कर प्रणाम किया। वे सिर्फ मृदु हास्य करके बोले—तार भी नहीं दिया।

"अरे, तुम इसके मन का पेंच नहीं जानते। रास्ते भर एक सेकिण्ड सोने नहीं दिया। जानते हो तुम, यह तुम्हें क्या समझती है? बिल्कुल साधोदास, इसकी राय में तुम्हें न खाना आता है, न नहाना, न बातें करना न और कुछ। तुम सिर्फ अपनी लेबोरेटरी को जानते हो। उसी में रात-दिन घुसे रहते हो, कहने लगी—बाबू जी, आप चल कर देख लेना, हजरत वहीं होंगे। अब देखूँ तुम्हारी यह लेबोरेटरी है क्या बला?"

महेन्द्र हँस दिये। उन्होंने एक स्निग्ध दृष्टि से पत्नी की ओर देखा—उसकी आँखे हँस रही थीं और रक्त की एक-एक बूँद नाच रही थी। उसने कहा पहिले थोड़ा हाथ मुँह धोकर सुस्ता लीजिए। पीछे देख लीजिएगा।

"पर मैं जरा देखूँ तो, तुम वहाँ करते क्या हो?"

महेन्द्र ने सङ्कोच से कहा—तब चलिए।

तीनों आदमी भीतर गये। रामधन असबाब ठिकाने लगाने के बन्दोबस्त में लगा। भीतर जाकर तीव्र विद्युत के प्रकाश में उनकी आँखें चौंधिया गईं। नीलू ने झट अपना चश्मा चढ़ा लिया और एक चश्का रायसाहब के हाथ में दे दिया। उसे आँखों पर रख, चारों तरफ नजर दौड़ाते हुए रायसाहब ने कहा—अच्छी खासी मुसीबत है भाई! इतने टेढ़े-तिरछे तार, और ट्यूब! इन्हें

देख-देख कर मेरा मन तो घपले में पड़ जाता है। तुम क्या कर रहे हो ?

"मैं हीरा बना रहा हूँ।"

"हीरा ! हीरा काहे से बना रहे हो ?"

"कोयले से।"

"कोयले से ?"

"जी हाँ वास्तव में कोयले का स्वरूप है। जो भू-गर्भ में लाखों वर्षों में गहन उत्ताप से हीरा बन जाता है। हम वही कृत्रिम उत्ताप देकर इसे तैयार किया चाहते हैं।"

"परन्तु जैसे और रत्न सब पत्थर हैं उसी भाँति हीरा भी तो एक पत्थर है।"

"जी नहीं, हीरा तो कोयला है। यदि उसे आग पर तपाया जायगा तो वह कोयले की भाँति जलकर खाक हो जायगा। पर यदि हवा का आवागमन रोक कर उसे तपाया जायगा तो वह ज्यों का त्यों धरा रहेगा, जलेगा नहीं।"

"अच्छा तुम्हारा सिद्धान्त क्या है ? कैसे तुम कोयले से हीरा बना सकते हो ?"

"सुनिए ! आप यदि कोयले को जलायें तो उसकी क्या हालत होगी ?"

नील ने बीच ही में कहा—"वह जल कर लाल अङ्गार हो जायगा।"

"ठीक, पर यदि उसे ढँक दिया जाय, और ओषजन हवा उसे न मिले तो ?"

"तो वह बुझ-जायगा।"

"अच्छा यदि हम उसे इस तरह तीव्र आँच दें कि उसमें हवा

न पहुँचने पाये और चारों तरफ से उसे तीव्र उत्ताप सहना पड़े, तब क्या होगा ?"

नीलू सोचने लगी। रायसाहब ने कहा—कोयला जलेगा तो हरगिज नहीं ?

'परन्तु हम उसे अधिक से अधिक उत्ताप दिये जायँगे।',

रायसाहब भी सोच में पड़ गए।

महेन्द्र ने कहा—असल, बात यह है कि हीरा में उद्जन का अंश नहीं रहता। वह केवल कोयला या अङ्गार का एक रूपान्तर मात्र ही है। अङ्गार के तीन रूप हैं, जिनमें सब से शुद्ध हीरा है। आप को मालूम है कि जमीन को जितना गहरा खोदा जाय उतना ही तापक्रम और दबाव बढ़ता जाता है। यही दो बातें कोयले को हीरा बना देती हैं।

"समझा ! वही उत्ताप और दबाव तुम अपने यन्त्रों से देना चाहते हो ?"

"जी हाँ, देखिए ! वायु-शून्य पात्र में कोयला भर यहाँ इस भट्ठी में हमने उसे उत्ताप देना प्रारंभ किया है। यह मीटर देखिए, ३६०० शतांश पर ताप पहुँच गया है। वह नली देखिए, कोयले साहब बिना ही जले और बिना ही पिघले इस असह्य उत्ताप से घबरा कर भाप बन कर उस ट्यूब में जा रहे हैं। ट्यूब में दबाव कम कर देने से, देखिए, वह पिघल रहा है। इधर देखिए, ४१३० शतांश पर सिर्फ १७ गुना वायु-भार से ही वह पिघलता जाता है। अब यह पिघला हुआ कोयला धीरे २ लोहे के एक मजबूत वायु शून्य बक्स में पहुँचेगा। ज्योंही वहाँ वह जायगा उसे ४००० शतांश तक गर्म किया जायगा। इस ताप पर लोहा मोम की भाँति पिघल कर भाप होने लगेगा। फिर उसे तुरन्त ही झटपट ठण्ढा कर दिया जायगा। ठण्ढा होने पर वह बेतरह सिकुड़ेगा और उसके

भीतर का अङ्गार भयानक दबाव पाकर ठण्ढा होने पर वह हीरा हो जायगा। पीछे नमक के तेजाब में डाल कर लोहे के टुकड़ों को और गन्धक तथा शोरे के तेजाब में डाल कर अन्य रासायनिक मिश्रणों को अलग कर दिया जायगा।"

रायसाहब चकित होकर यन्त्रों को देख और महेन्द्र की बातें सुन रहे थे। उन्होंने विस्मित होकर कहा—तो तुम विश्वास करते हो कि हीरा बना सकोगे?

महेन्द्र ने मुस्करा कहा—कल प्रातःकाल सब कुछ आप ही प्रकट हो जायगा।

नीलू ने कहा—और वह पारस क्या हुआ?

"वह अभी नहीं तैयार कर सका हूँ।"

"सो तुम पारस भी बना रहे हो?"

"जी हाँ!"

"खूब, लोहा छूते ही सोना हो जायगा? क्यों?"

"सिर्फ लोहा ही नहीं, अन्य धातु भी।"

"भाई वाह, तुम्हारा यह पारस तो फिर शायद गुरु गोरखनाथ की झोली के पारस से भी बढ़िया रहेगा।"

"रहना चाहिए। क्योंकि तब से अब विज्ञान ने बहुत उन्नति की है।"

नीलू ने हँस कर कहा—अपने उस सोने की भी कैफियत सुनाइए।

महेन्द्र ने मुस्करा कर कहा—वह तैयार हो गया है। और गवर्नमेण्ट के पास भेज दिया गया है; परन्तु अब आप लोग चलिए, स्नान-भोजन से निबट लीजिए।

महेन्द्र बाहर आये। नीलू जैसे धरती पर पैर नहीं रखती थी।

———

२२

अपने महत्वपूर्ण आविष्कारों के कारण महेंद्र को 'सर' की उपाधि मिली। इसके उपलक्ष में नीलू ने एक भारी पार्टी का आयोजन किया है। अपनी सहायता के लिए उसने विनय और रायसाहब को बुला लिया है। महेंद्र से उसे अधिक सहायता की आशा नहीं थी। अब भी उनका अधिक समय लेबोरेटरी में व्यतीत होता। नीलू बहुत व्यस्त थी।

विनय और नीलू आवश्यक परामर्श में व्यस्त थे। विनय ने कहा बड़ी मुश्किल है नीलू, सर साहब को तो अपनी लेबोरेटरी से फुर्सत ही नहीं मिल रही है, काम कैसे पूरा होगा?

"क्यों तुम समझते हो कि सर साहब ही सब कुछ हैं। ठहरो, मेहमानों को कार्ड तो जा चुके हैं। गवर्नर की स्वीकृति आ चुकी है। अब तुम जरा खाने-पीने के चीजों को एक बार अच्छी तरह जाँच पड़ताल कर लो। पिता जी भी कुछ कार्य करेंगे कि सब कार्य मैं ही करूँ?"

वे ही-ही करके हँस देंगे। लीजिए वे आ रहे हैं।"

रायसाहब ने आकर व्यग्र-भाव से कहा—बड़ी मुश्किल है। भई ये हीरे बने खूब! मैं सोचता हूँ····

"विनय, इस विषय में तुम्हारी क्या राय है?" नीलू ने हँस कर कहा।

विनय की राय से इस विषय में कुछ लाभ नहीं। जरा इस फेहरिश्त पर एक नजर डालिए तो, देखूँ आपकी इस बावत क्या राय है?

"ओह, आफत! जिधर जाओ आफत; मगर मैं साफ कहे देता हूँ, जरा इसे देखिए तो?"

"लाओ देखूँ।"—रायसाहब ने वहीं बैठकर चश्मा चढ़ाया। सरसरी नजर डाल कर कहा—बहुत अच्छे, खूब धूमधाम का बन्दोबस्त है। मगर भई महेन्द्र कहाँ है? देखता हूँ वह……।

"जी हाँ, वे अपनी लेबोरेटरी में हैं।"

विनय ने देखा रायसाहब से कुछ मदद मिलनी असंभव है। उसने कहा—नीलू, बाबू जी को अब तंग न करो। सर साहब हीरे बनाते रहें और आप उनकी तारीफ करते रहें। तब तक चलो हम जरूरी व्यवस्था की रूप-रेखा बना लें। गवर्नर ठीक ६ बजे आ जायँगे। और बाकी मेहमान पौने छः बजे। बैण्ड आदि का बन्दोबस्त सब ठीक-ठाक हो गया है। अच्छा मैं जरा बाहर के सामान की देखभाल कर आता हूँ, खाने-पीने के सामान को तुम देख लो।

दो दीन बीत गये। दावत का दिन आ गया। कोठी के बाहर लान में १२ सौ आदमियों के खाने-पीने का प्रबन्ध था। दिल्ली के प्रथम श्रेणी के होटल को सर्विस सौंपी गई थी। सजावट आदि सब अपूर्व थी, मेहमान आने लगे थे। रायसाहब घबराये हुए आये, उन्होंने कहा—आफत है नीलू, महेन्द्र कहाँ हैं, कहाँ हैं, मेहमान आ रहे हैं।

नीलू बहुत व्यस्त थी, उसने कहा—मैं अभी देखती हूँ।

लेबोरेटरी में देखा—महेन्द्र मेज पर कागज फैलाये एक कम्पास हाथ में पकड़े एक नये ढङ्ग की भट्ठी की रूप-रेखा बना रहे थे। नीलू ने कहा—सर साहब, क्या मैं आपके काम में दखल दे सकती हूँ?

महेन्द्र ने देखा—नीलू भुवनमोहनी रूप लिये खड़ी है। महेन्द्र मोह गये।

उन्होंने कहा—आओ नीलू, बस जरा-सा काम बाकी है।

"मगर मेहमान आने लगे हैं।"

"ओह। सिर्फ १५ मिनट!"

"अभी आपको नहाना, कपड़े बदलना और दाढ़ी भी बनानी है।"

"हाँ यह तो ठीक है। चलो फिर, यह काम अधूरा ही रहेगा।"

"लाचारी है।"

नीलू ने महेन्द्र के गले में बाहें डाल दीं। महेन्द्र ने संसार की सबसे बड़ी आसक्ति की शरण ली।

जब नीलू पति को एक प्रकार से सोलहो शृंगार करा कर बाहर लाई तब तक सब मेहमान आ चुके थे। महेन्द्र पर बधाइयों की बौछार बरस गई। गवर्नर ने सपत्नीक आकर महेन्द्र और नीलू को बधाई दी और यह शुभ-सन्देश दिया कि सरकार ने १० लाख रु० की एक रकम आपके रिसर्च के लिये और स्वीकृत की है।

एक-एक करके मेहमान विदा हो गये। और शुभ्र नीलाकाश के नीचे महेन्द्र और नीलू, एक संगमर्मर की चौकी पर एकान्त पा, बैठे। तारे अपनी उज्ज्वल आँखों से उन्हें झाँक रहे थे। चाँद की क्षीण रेखा नवोढ़ा वधू की भाँति नीलाम्बर से निकल रही थी।

नीलू ने कहा—अब सब के बाद मेरे प्राण! मेरी बधाई ग्रहण करो।

महेन्द्र से कुछ कहा न गया। वे नीलू के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर आकाश की ओर एकटक देखते रहे।

नीलू ने उनके वक्षस्थल के निकट खसक कर कहा—क्या सोच रहे हो, कहो तो?

महेन्द्र ने स्निग्ध स्वर में कहा—ओह! मैं सचमुच बड़ा भाग्यशाली हूँ नीलू, आखिर तुमने मुझे अपना लिया।

"किस भाग्यवती को तुम-सा पति मिला होगा?"

"सच !"

"ओह !"—नीलू की आँखों से दो बड़े-बड़े मोती ढरक गये। महेन्द्र ने उनके मूल्य को समझा। उन्होंने नेत्रों पर चुम्बन अङ्कित करके कहा—नीलू, तो तुमने पति-पत्नी का सम्बन्ध समझ लिया?

"कुछ-कुछ।"

"तुम समझ गईं कि दोनों को परस्पर इतना निकट हो जाना चाहिए कि वे परम विश्वस्त हो सकें?"

"हाँ, जिससे परस्पर उन्हें किसी बात के सन्देह की आशंका ही न रहे।

"निस्सन्देह।"

दोनों कुछ देर चुप रहे। फिर महेन्द्र ने कहा—देखो प्रिये! इस क्षुद्र शरीर के बन्धन में कर्मवश जो आत्मा बन्धक है वह अति महान है। उसका बड़ा विस्तार है। उसका महाज्ञान और अविनश्वर सत्य है। उसने सृष्टि की अनगिनत प्रलय और उत्पत्तियाँ देखी हैं। वह विश्व का सत्व है और विश्व सम्पदाओं का अधिपति। नश्वर शरीरमें बन्धक रहने पर भी वह जब मानव-योनि का सुयोग पाता है, तब वह अपनी महत्ता का पूर्ण विकास कर सकता है। विश्व की सम्पदाएँ और अगम्य ज्ञान, जिनका वह पूर्ण अधिष्ठाता है, उनका विनियोग जब वह क्षुद्र शरीर के माध्यम से प्रगट करता है, तो लक्षावधि मूढ़ आत्मायें जो प्रसुप्तावस्था में भोगवश शरीरों में बन्धक पड़ी रहती हैं, आश्चर्य-चकित हो जाती हैं और ससम्मान झुक जाती हैं। प्रेम इस आत्मा की एक ज्वाला है। प्रेम की इस ज्वाला से समय-समय पर उसका मैल भस्म होता है। पर इन्द्रियों की वश्यता जो पशु धर्म है और पशु धर्मी मानवों में जिसका बाहुल्य होता है, वह प्रेम की वासना से बचा नहीं सकता। वासना उसे अति क्षुद्र बना देती है

और वह महा मानव एक नगण्य, विवश और विकल कीट हो जाता है। फिर वह अपना विस्तार कर ही नहीं सकता। तुम प्रिये! क्या इस भेद को समझ गई हो ?

"पूरा नहीं; पर कुछ कुछ।"

पूरा समझने पर मनुष्य समझ जाता है कि यह आत्मा मुझमें, तुममें और उसमें एक है। और तब वह इच्छा, द्वेष और प्रयत्न सबको त्याग देता है। वह भिन्न २ शरीरों में अनुवर्त्तित होने पर भी एक हो जाता है। एक ही वह, सब के मन की बातें जानता और सब का सब कुछ हो जाता है।

महेन्द्र चुप हो गये। नील भी चुप थी। दोनों की दृष्टि आकाश में दूर तक फैले तारों की ओर थी। एकाएक महेन्द्र ने कहा—"देखो प्रिये! इस अनन्त आकाश में फैले हुए तारों की भाँति ही हमारे व्यक्तित्व के प्रभाव भी अानन्त विश्व में फैले हुए हैं। सो वे हमारे व्यक्तित्व, हमारे अपने ही उपभोग और सुख की चीज न रहनी चाहिए। बल्कि वे सार्वजनिक होनी चाहिये।"-महेन्द्र चुप हो गये। नीलू धीरे से उठी। उसने अपनी साड़ी सम्हाली और महेन्द्र के चरणों में गिर कर उसने कहा—पतिदेव!

महेन्द्र ने उसे दोनों हाथों से ऊपर उठा कर कहा—नहीं-नहीं नीलू, तुम तो मुझमें अपने को खोजने लगीं। सुनो तुम, मैंने अपने को तुममें भुलाया है। तुम्हें मुझमें अपने को खोना होगा। तभी हमारी एकात्मीयता होगी।

परन्तु नीलू जैसे जड़ हो गई थी। उसमें और अधिक ज्ञान ग्रहण की शक्ति नहीं रह गई थी। उसकी आत्मा जैसे विदेह हो कर महेन्द्र में लीन हो गई थी। Best

॥ इति ॥

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

२) कुँकुम		
२॥) इशारा	२॥) जलन	४॥) चूड़ियाँ
३॥) भँवरा	४) मञ्जिल	३॥) निर्मोही
५॥) नीलम	२॥) पागल	४) लवँग
२।॥) अकेला	२॥) बसेरा	३॥) आहुति
४) पगडंडी	३॥) धड़कन	३) सोलह अगस्त
४) अँगड़ाई	४॥) मुमताज	३) पीली कोठी
३।॥) खँड़हर	५) सूखे पत्ते	२॥) बदरी की रात
३॥) पायल	३।) चितवन	२।॥) अनारकली
२) मशाल		
४) बहते आँसू	२।॥) रक्त की प्यास	२) नरमेध
४॥) आत्मदाह	३॥) दो किनारे	२।) मन्दिर की नर्तकी
१।॥) अदल बदल	२) नीलमणि	
३) जला डालो	३) आँधियाँ	४) चिता की राख
२) मजार का दीया	१॥) जीवन-दान	१॥) चीखती दीवारें
२।) मिट्टी बोल उठी		
२।) अजेय तारा	२।) प्यास	१॥) अमरराठौर
	२॥) कसक	

चौधरी एण्ड सन्स, बनारस—१

३) चौरङ्गी	२।।) सहारा	२।।) पपीहा बोले आधी रात
२।।) कागज के फूल	३।।) काली घटा	२।।) आशियाना
३।।) मकड़ी का जाल	३।।) ललकार	२।।) तारों भरी रात
३) साँवरिया	३।।) काजल	३) आवारा
२।।) चाँदनी	२।।) बन्धन	
१।।) बड़े चाचाजी	२) महामाया	२।।) विचित्र-प्रबन्ध
१।।) उजड़ा घर	३।।) छिन्न-पत्र	२।।) जापान-यात्री
२।।) महाकवि सांड़	२।।) पानी पाँड़े	१।।) मेरे राम का फैसला
२) चूनाघाटी	२।) बेचारे मुन्शीजी	१।।) मिस्टर तिवारी का टेलीफोन
१।।।) ठोकर	२।।) त्याग	२।।) ममता
३।) जवानी का नशा	१।।।) रोटी	१।।) राजपूतनन्दिनी
३) विप्लवी वीराङ्गना	२।) मनोरमा	२) प्यासी तलवार
२।) बागी की बेटी	२।) हाहाकार	१।।) नदी में लाश
१।।) होटल में खून	१।।) गरीब	१।।) साहसी राजपूत
३।।) घर की लाज	२।।) नर और नारी	२।।) प्यासी आँखें
१।।।) प्रेम के आँसू		

२।।) स्वास्थ्य और व्यायाम	१।।) छत्रपति शिवाजी
२।।) संसार की भीषण राज्य-क्रान्तियाँ	१।।) अमरसिंह राठौर
३।।) भारत सन् ५७ के बाद	१।।) पृथ्वीराज चौहान
३।।) झाँसी की रानी	३।।) वीर दुर्गादास राठौर

१) गुलामी प्रथा का उन्मूलनकर्ता अब्राहमलिंकन

चौधरी एन्ड सन्स, बनारस—१